सत्यमेव जयते

जलवायु परिवर्तनः भारत में सतत् विकास की चुनौतियां

राज्य सभा सचिवालय
नई दिल्ली
अक्तूबर, 2008

जलवायु परिवर्तनः भारत में सतत् विकास की चुनौतियां

अनुसंधान एकक (लार्डिस)
राज्य सभा सचिवालय
नई दिल्ली

अक्तूबर, 2008

सामयिक पत्रों की शृंखला (3)

यह लेख ऐसे प्रकाशित स्रोतों पर आधारित है, जिन्हें उपयुक्त रूप से उद्धृत किया गया है। इसमें दी गई सूचना की प्रामाणिकता अथवा व्यक्त किए गए विचारों और राय के लिए संबंधित स्रोत ही उत्तरदायी हैं, न कि राज्य सभा सचिवालय।

विषय सूची

पृष्ठ संख्या

प्राक्कथन ..... (iii)

I

भूमिका 1

जलवायु परिवर्तन संबंधी समझ 2

ग्रीनहाउस गैसें और वैश्विक ताप वृद्धि 2

II

जलवायु परिवर्तन के आयाम 4

ग्रीनहाउस गैसों के दीर्घकालिक परिणाम 4

त्वरित प्रतिक्रिया की आवश्यकता 4

जलवायु-विज्ञान सम्बन्धी वैश्विक प्रभाव 4

विकसित बनाम विकासशील देशों की प्रतिबद्धताएं 5

जलवायु परिवर्तन और विश्व के गरीब लोग 6

जलवायु परिवर्तन, व्यापार और व्यापार संरक्षण 7

जलवायु परिवर्तन और व्यवसाय तथा उद्योग पर्यावरण 9

जलवायु परिवर्तन के आर्थिक पहलू 10

राष्ट्रीय ऊर्जा नीतियां तथा जलवायु परिवर्तन 11

III

जलवायु परिवर्तन के प्रभाव 13

कृषि और खाद्य सुरक्षा 13

भारतीय कृषि पर प्रभाव 14

जल की कमी और जल संबंधी असुरक्षा 15

भारत में जल की स्थिति पर प्रभाव 16

पृष्ठ संख्या

समुद्र-तल के स्तर में वृद्धि 17

भारत में तटवर्ती राज्यों पर प्रभाव 18

पारिस्थितिकी तंत्र और जैव-विविधता 18

भारत की जैव-विविधता पर प्रभाव 19

जलवायु परिवर्तन और स्वास्थ्य 20

IV

जलवायु परिवर्तन की चुनौतियों के प्रति भारत की प्रतिक्रिया 23

V

भारत के जलवायु के अनुकूल उपाय 25

VI

विकल्प 27

ऊर्जा मिश्रण में नवीकरणीय ऊर्जा की बृहत् हिस्सेदारी 27

सतत् विकास के निमित्त गांधीवादी दृष्टिकोण 28

VII

उपसंहार 29

प्राक्कथन

''*जलवायु परिवर्तन: भारत में सतत् विकास की चुनौतियां*'' नामक यह प्रकाशन संसद सदस्यों की सुविधा के लिए प्रासंगिक मुद्दों के बारे में समय-समय पर प्रकाशित किए जाने के लिए प्रस्तावित 'सामयिक पत्रों' की शृंखला में द्वितीय प्रकाशन है।

इसमें, जलवायु परिवर्तन की चुनौतियों का सामना करने की भारत की प्रतिक्रिया को उजागर करते हुए, जलवायु परिवर्तन के विविध आयामों और प्रभावों को प्रस्तुत करने का प्रयास किया गया है। इसमें विकासशील देशों के समग्र परिप्रेक्ष्य में भारत द्वारा जलवायु के अनुकूल किए गए उपायों को भी रेखांकित किया गया है।

इस सामयिक पत्र में वैश्विक ताप वृद्धि और जलवायु परिवर्तन के क्षेत्र में कार्यरत विशेषज्ञों जैसे प्रो॰ एम॰ एस॰ स्वामीनाथन, संसद सदस्य, श्री एन॰ के॰ सिंह, संसद सदस्य और डॉ॰ आर॰के॰ पचौरी, अध्यक्ष, आईपीसीसी एवं महानिदेशक, ऊर्जा और संसाधन संस्थान (टीईआरआई) के विद्वत विचारों और राय को बहुत बड़े पैमाने पर शामिल किया गया है। राज्य सभा सचिवालय उनके अमूल्य सुझावों के लिए उनका आभारी है।

आशा है कि सदस्य इस सामयिक पत्र को प्रासंगिक और उपयोगी पाएंगे।

विवेक कुमार अग्निहोत्री,
महासचिव,
राज्य सभा।

नई दिल्ली;
16 अक्तूबर, 2008

जलवायु परिवर्तनः भारत में सतत् विकास की चुनौतियां

I

भूमिका

जलवायु परिवर्तन आज मनुष्य के समक्ष उपस्थित जटिल समस्याओं में से एक समस्या है। इस समस्या की बढ़ती हुई जटिलता पृथ्वी पर जीवन के अस्तित्व को प्रभावित करने वाले विभिन्न प्रकार के व्यापक मुद्दों से संबंधित इसके गहरे वैश्विक आयामों में निहित हैं। व्यापक और विभिन्न आयामों तथा निहितार्थों के साथ ऐसे जटिल मुद्दे को समझना सभी हितधारकों, विशेषकर हमारे नीति निर्माताओं के लिए अत्यधिक महत्वपूर्ण हो जाता है। जलवायु परिवर्तन के ठीक-ठीक आकार और परिणामों के संबंध में विभिन्न प्रकार की धारणाएं हैं। तथापि, इसमें कुछ भी गोपनीय नहीं है कि जलवायु परिवर्तन से उत्पन्न होने वाले खतरे वास्तव में गहरे हैं जिसका तत्काल प्रशमन किए जाने की आवश्यकता है। अब इस बात का पक्का साक्ष्य मौजूद है कि जलवायु परिवर्तन एक वास्तविकता है।[1] आज, यह वैज्ञानिक रूप से सिद्ध हो चुका है कि विश्व के तापमान में अत्यधिक वृद्धि हो रही है। जलवायु तंत्र का तापवर्धन सुस्पष्ट है, जैसाकि अब वैश्विक औसत वायु और सामुद्रिक तापमानों में वृद्धि, हिम और बर्फ के व्यापक स्तर पर पिघलने तथा बढ़ते हुए वैश्विक औसत समुद्र-स्तर को देखने से स्पष्ट हो जाती है।[2] इस तथ्य से इन्कार नहीं किया जा सकता है कि यह समस्या विद्यमान है और यह दिन-प्रतिदिन खतरनाक आकार धारण करती जा रही है। अतः, यह अत्यावश्यक हो गया है कि जलवायु परिवर्तन की उभरती हुई चुनौतियों का सामना करने के लिए एक उपयुक्त प्रतिक्रिया निर्धारित करने हेतु यथाशीघ्र दृढ़ उपाय किए जाएं।

जलवायु परिवर्तन एक पृथक मुद्दा नहीं है। इसके कई पहलू और अंतर्संबंध हैं जैसे, विज्ञान और प्रौद्योगिकी, अर्थव्यवस्था और व्यापार, कूटनीति और राजनीति—जो प्रसार कर रहे मुद्दों के इस जटिल विश्व में इसे भी एक और मुद्दा मात्र नहीं बनाता, बल्कि सभी मुद्दों का मूल बना देता है। फिर भी, जलवायु परिवर्तन मानवता के समक्ष उपस्थित अन्य समस्याओं से भिन्न है और यह हमें अनेक स्तरों पर भिन्न तरीके से सोचने के लिए मजबूर करता है। यह हमें इस पर विचार करने के लिए बाध्य करता है कि पारिस्थितिकीय रूप से परस्पर निर्भर मानव समुदाय के एक भाग के रूप में रहने का क्या अर्थ होता है। मानव समाज को विशिष्टता प्रदान करने वाली अनेक विविधताओं के मद्देनजर, जलवायु परिवर्तन एक वस्तु-विशेष अर्थात् पृथ्वी ग्रह का प्रबल स्मरण दिलाता है, जिसे हम समान रूप से उपयोग करते हैं। सभी राष्ट्रों और सभी लोगों की एक ही वातावरण में साझेदारी होती है। और, यह हमारे पास केवल एक ही है। व्यक्तिगत और सामूहिक दोनों रूप से सभी देशों द्वारा जलवायु असंतुलन पर ध्यान दिया जाना मनुष्य के कुशल-क्षेम और वर्तमान एवं भावी पीढ़ियों की समृद्धि के लिए महत्वपूर्ण होगा।

---

[1]7 जून, 2005 को 11 राष्ट्रीय विज्ञान अकादमियों—ब्राजील, कनाडा, चीन, फ्रांस, जर्मनी, भारत, इटली, जापान, रूस, यू॰ के॰ और संयुक्त राज्य अमरीका—द्वारा विश्व के नेताओं हेतु दिया गया संयुक्त वक्तव्य।

[2]जलवायु परिवर्तन 2007, सिंथेसिस रिपोर्ट, आई॰पी॰सी॰सी॰, पृ॰ 2.

जलवायु परिवर्तन संबंधी समझ

जलवायु परिवर्तन का तात्पर्य कालांतर में पृथ्वी की वैश्विक जलवायु या क्षेत्रीय जलवायु में बदलाव आने से है। यह दशकों से लेकर लाखों वर्षों के काल-पैमानों पर वातावरण की अवस्था में आए बदलावों को दर्शाता है। अनेक व्यक्तियों द्वारा अनेक तरीकों से जलवायु परिवर्तन को परिभाषित किया गया है। जहां कुछ लोग इसे पृथ्वी की स्वाभाविक प्रक्रियाओं की प्रशाखा के रूप में परिभाषित करते हैं, वहीं अन्य इसे मानवीय क्रियाकलापों के परिणाम के रूप में परिभाषित करते हैं। इन दोनों भिन्न दृष्टिकोणों के बीच संतुलन स्थापित करते हुए, जलवायु परिवर्तन को ऐसे परिवर्तन के रूप में परिभाषित किया जाता है जो प्रत्यक्ष या परोक्ष रूप से मानवीय क्रियाकलाप के कारण उत्पन्न होता है जिससे वैश्विक वातावरण की संरचना बदल जाती है और जो तुलनीय कालावधियों में देखी गई प्राकृतिक जलवायु भिन्नताओं के अतिरिक्त होता है।[3] वास्तव में, पृथ्वी की जलवायु में आए वर्तमान परिवर्तनों को केवल उन प्राकृतिक प्रक्रियाओं द्वारा ही स्पष्ट नहीं किया जा सकता जो पृथ्वी की पूर्व की उष्ण अवधियों को स्पष्ट करते थे। इस संबंध में व्यापक रूप से वैज्ञानिक मतैक्य है कि हाल के दशकों में अधिकांश तापवर्धन का कारण मानवीय क्रियाकलापों को नहीं ठहराया जा सकता हैं।[4] यदि इस परिवर्तन के लिए व्यापक तौर पर मनुष्य ही जिम्मेदार हैं, तो आज हम जिन विकल्पों का चयन करेंगे, उनका भविष्य की जलवायु पर महत्वपूर्ण प्रभाव पड़ेगा। यह जलवायु परिवर्तन को अत्यधिक चिन्ता का महत्वपूर्ण विषय बना देता है।

ग्रीनहाउस गैसें और वैश्विक तापवर्धन

पृथ्वी की जलवायु गत्यात्मक होती है और एक प्राकृतिक चक्र के तहत हमेशा बदलती रहती है। पृथ्वी की जलवायु के मानव जाति के क्रमिक विकास के लिए अनुकूल बनने में करोड़ों वर्ष लग गए। वायुमंडल से गुजरने वाली सौर ऊर्जा पृथ्वी की सतह द्वारा अवशोषित कर ली जाती है और इसका एक बड़ा हिस्सा वायुमंडल में वापस परावर्तित हो जाता है। हालांकि, पृथ्वी के वायुमंडल में अल्प मात्राओं में कार्बन डाईऑक्साइड, मीथेन और नाइट्रस ऑक्साइड (जिन्हें सामूहिक रूप से ग्रीनहाउस गैसें कहा जाता है) मौजूद होती हैं जो एक आंशिक आवरण के रूप में कार्य करती हैं जिनमें बाहर जा रही कुछ अवरक्त किरणें कैद हो जाती हैं और पृथ्वी पर वापस परावर्तित हो जाती हैं। इस प्रकार ये पृथ्वी की सतह को सामान्य की अपेक्षाकृत अधिक गरम रखती हैं। इस ग्रीन हाउस प्रभाव (ग्रीनहाउस गैसों का कैद होना) की अनुपस्थिति में, पृथ्वी का औसत तापमान वर्तमान से 30° सें॰ कम होगा[5] जिसका अर्थ है पृथ्वी एक हिमाच्छादित स्थान होगी। अत: पृथ्वी पर वर्तमान जीव-रूपों में से अधिकतर अपने अस्तित्व के लिए प्राकृतिक ग्रीनहाउस प्रभाव पर निर्भर करते हैं।

हालांकि, मानवीय क्रियाकलापों के कारण इन ग्रीनहाउस गैसों के उत्सर्जन में वृद्धि परिवर्धित ग्रीनहाउस प्रभाव उत्पन्न करती है। मानव क्रियाकलापों के कारण वैश्विक स्तर पर ग्रीनहाउस गैसों के उत्सर्जन में पूर्व-औद्योगिक काल से अब तक वृद्धि हुई है और 1970 और 2004 के बीच यह वृद्धि 70% रही है।[6] तीन प्राकृतिक ग्रीनहाउस गैसों (कार्बन डाइऑक्साइड, मीथेन और नाइट्रस ऑक्साइड)

---

[3] आर्टिकल 1, यूनाइटेड नेशन्स फ्रेमवर्क कंवेंशन ऑन क्लाइमेट चेंज।

[4] इंटर-गवर्नमेंटल पैनल ऑन क्लाइमेट चेंज (आई॰पी॰सी॰सी॰) थर्ड असेसमेंट रिपोर्ट, 2001.

[5] गौतम दत्त और फैबीना गैओली कोपिंग विद क्लाइमेट चेंज (ई॰पी॰डब्ल्यू॰, 20 अक्तूबर, 2007, पृ॰ 4239)।

[6] क्लाइमेट चेंज 2007, सिंथेसिस रिपोर्ट, आई॰पी॰सी॰सी॰, पृ॰ 5.

के अलावा, बढ़े हुए उत्सर्जन में क्लोरोफ्लूरोकार्बन (सी एफ सी), हाइड्रोफ्लूरोकार्बन (एच एफ सी), परफ्लोरोकार्बन (पी एफ सी) और सल्फर हेक्साफ्लयूराइड (एस एफ 6) समेत अनेक ''मानव-निर्मित'' गैसों का उत्सर्जन भी शामिल है।[7] इन ग्रीनहाउस गैसों की सान्द्रता में वृद्धि सतह के तापमान को बढ़ा देती है। पृथ्वी के औसत तापमान में यह वृद्धि वैश्विक तापवर्धन कहलाती है, जो वैश्विक स्तर पर अभूतपूर्व जलवायु परिवर्तनों को उत्पन्न करने की संभावना रखती है जिससे सम्पूर्ण विश्व के पारिस्थितिकीय तंत्र के लिए खतरा पैदा हो सकता है।

आज, इसके साक्ष्य हैं कि हम पृथ्वी के वायुमंडल की वहन क्षमता पर अत्यधिक भार डाल रहे हैं। ग्रीनहाउस गैसों का जो पृथ्वी के वायुमंडल में ऊष्मा को कैद कर लेती हैं, का भंडार अभूतपूर्व दर से जमा होता जा रहा है। आज, अधिकाधिक वैज्ञानिक यह मानते हैं कि हम पहले ही सभी प्रकारों की अतिशयता को पार करके नई मौसमी व्यवस्था में प्रवेश कर चुके हैं।[8] यह पूर्वानुमान है कि 21वीं सदी के दौरान, औसत वैश्विक तापमान में 5° सें° से अधिक की वृद्धि हो सकती है। इस पूर्वानुमान के पीछे, एक महत्वपूर्ण तथ्य यह है कि हम पारिस्थितिकीय अन्योन्याश्रयता को बिगाड़ते हुए पर्यावरण को तहस-नहस कर रहे हैं। वस्तुतः हमारी पीढ़ी भावी पीढ़ियों को एक अवहनीय पारिस्थितिकीय कर्ज धरोहर के रूप में प्राप्त करने के लिए बाध्य कर रही है जो भविष्य के विकास और समृद्धि को जोखिम में डाल देगा।

---

[7] क्लाइमेट चेंज, 2007, सिंथेसिस रिपोर्ट, आई°पी°सी°सी°, पृ° 5.

[8] ''हर्बर्ट गिरार्डेट (एडिटर), 'सर्वाइविंग द सेंचुरी' (रॉस गेल्बस्पैन, एड्रेसिंग क्लाइमेट केओस) अर्थस्कैन, लंदन, 2007.

II

जलवायु परिवर्तन के आयाम

जलवायु परिवर्तन के खतरों को टालने का प्रारंभिक बिंदु है—इस समस्या के विशेष आयामों की पहचान करना। ये आयाम निम्नानुसार हैं:

(i) ग्रीनहाउस गैसों (जी एच जी) के दीर्घकालिक परिणाम

एक महत्वपूर्ण पहलू यह है कि कार्बन डाईऑक्साइड तथा अन्य ग्रीनहाउस गैसें लम्बे समय तक वातावरण में बनी रहती हैं। इस स्थिति को पलटने के लिए कोई वापसी (रिवाइन्ड) बटन नहीं हैं। आगामी शताब्दी में लोगों को हमारे उत्सर्जनों के घातक परिणामों को झेलते हुए जीना पड़ेगा। जलवायु प्रक्रियाओं और फीडबैक से सम्बद्ध समयमान के कारण मानवोद्भव ऊष्मा और समुद्र स्तर में वृद्धि शताब्दियों तक जारी रहेंगी, चाहे ग्रीनहाउस गैस संकेन्द्रण स्थिर भी हो जाएं।[9] यहां तक कि ठोस उपाय भी वास्तव में औसत तापक्रम परिवर्तनों को प्रभावित नही करेंगे। विश्व को जलवायु परिवर्तन के ऐसे घातक परिणामों के साथ जीना पड़ेगा, जिनका सामना हम पहले ही कर रहे हैं।

मानव विकास रिपोर्ट, 2007 में जलवायु परिवर्तन के मुद्दे को संक्षिप्त रूप से एक संदर्भ में प्रस्तुत किया गया है। इसमें यह बताया गया है कि:

आज हम जलवायु परिवर्तन के बारे में जो भी करते हैं, उसके परिणाम लगभग एक शताब्दी या उससे अधिक तक जारी रहेंगे। इस परिवर्तन का वह हिस्सा, जो ग्रीनहाउस गैस के उत्सर्जनों के कारण है, निकट भविष्य में पलटा नहीं जा सकता है। हम जो ऊष्मा प्रग्रहण गैसें 2008 में वातावरण में छोड़ेंगे वे 2108 तक और उसके बाद भी वातावरण में बनी रहेंगी। अत: हम आज जो विकल्प चुनेंगे, वे हमारे अपने जीवन को तो प्रभावित करेंगे ही, हमारे बच्चों और नाती-पोतों के जीवन को इससे भी ज्यादा प्रभावित करेंगे। इससे जलवायु परिवर्तन अन्य नीतिगत परिवर्तनों से भिन्न तथा और अधिक मुश्किल हो जाता है।

(ii) त्वरित प्रतिक्रिया की आवश्यकता

अत्यावश्यकता का भाव जलवायु परिवर्तन द्वारा खड़ी की गई चुनौतियों का एक अन्य आयाम है। जलवायु परिवर्तन के मामले में उत्सर्जनों में कटौती करने के लिए समझौता किए जाने में प्रत्येक वर्ष के विलम्ब से ग्रीनहाउस गैस के स्टॉक में वृद्धि होने लगती है, जिससे भविष्य में तापक्रम में और अधिक वृद्धि हो जाएगी।

(iii) जलवायु सम्बन्धी वैश्विक प्रभाव

जलवायु परिवर्तन की चुनौती का एक अन्य महत्वपूर्ण आयाम इसका वैश्विक प्रभाव है। पृथ्वी का वातावरण ग्रीनहाउस गैसों में इनके उद्भव के मामले में देश के अनुसार अंतर नहीं करता है। चीन से

[9]क्लाइमेट चेंज 2007, सिन्थेसिस रिपोर्ट, आई॰पी॰सी॰सी॰, पृ॰ 12.

उत्सर्जित एक टन ग्रीनहाउस गैसें उतना ही भार वहन करती हैं जितना कि संयुक्त राज्य अमरीका से उत्सर्जित एक टन ग्रीनहाउस गैसें वहन करती हैं - एक देश के उत्सर्जन किसी अन्य देश की जलवायु में परिवर्तन की समस्या का कारण बन जाते हैं। यह स्पष्टतया इस बात को दर्शाता है कि कोई भी देश जलवायु परिवर्तन के विरुद्ध लड़ाई को अपने बल पर नहीं जीत सकता है। इसके लिए सामूहिक कार्रवाई कोई विकल्प नहीं है, बल्कि एक मजबूरी है। लेकिन अंततः, यह एक ऐसा अनिवार्य संकट है, जिससे सभी लोगों और सभी देशों को खतरा है। इस बारे में हमारे पास एक साझा दृष्टिकोण अपनाकर सामूहिक रूप से आगे बढ़ने या अलग-थलग पड़ने का विकल्प मौजूद है, हम जिस विकल्प को चुनेंगे, वही जलवायु परिवर्तन की चिंताओं के हल ढूंढने की हमारी क्षमता को निर्धारित करेगा।

(iv) विकसित बनाम विकासशील देशों की प्रतिबद्धताएं

जलवायु परिवर्तन का एक अन्य महत्वपूर्ण आयाम विकसित और विकासशील देशों की भिन्न-भिन्न प्रतिबद्धताओं से संबंधित होता है। उत्सर्जनों को सीमित व कम करने और जलवायु परिवर्तनों से अनुकूलन करने की चुनौती हम सभी के सामने हैं, जोकि कार्रवाई किए जाने हेतु देशों की साझा बल्कि भिन्न-भिन्न जिम्मेदारियों पर आधारित है। संयुक्त राष्ट्र के जलवायु परिवर्तन संबंधी रूपरेखा अभिसमय (जिसे मई, 1992 में रियो पृथ्वी शिखर-सम्मेलन में स्वीकार किया गया था) का उद्देश्य वातावरण में ग्रीनहाउस गैस सांद्रणों को एक ऐसे स्तर पर स्थिर करना है, जिससे जलवायु तंत्र में होने वाले खतरनाक, मानवोद्भव हस्तक्षेप को रोका जा सके। पर्यावरण-अनुकूल प्रणालियों को जलवायु परिवर्तन के साथ प्राकृतिक रूप से अनुकूलन करने देने, यह सुनिश्चित करने कि खाद्यान्न उत्पादन के लिए खतरा पैदा न हो और आर्थिक विकास में सतत् रूप से वृद्धि करने के लिए इस स्तर को एक समय-सीमा के भीतर प्राप्त किया जाना चाहिए।[10] प्रथम उपाय के तौर पर, इस अभिसमय में विकसित देशों को यह कहा गया था कि वे वर्ष 2000 तक अपने ग्रीनहाउस गैस उत्सर्जनों को 1990 के स्तरों तक सीमित करें। वास्तविकता यह है कि वर्ष 1990 से लेकर अब तक इन देशों से उत्सर्जन में वृद्धि ही हुई है। वर्ष 1990 और 2005 के बीच, कुल 40 विकसित देशों में से 26 में ग्रीनहाउस गैस के उत्सर्जन में निरन्तर वृद्धि हुई।[11] इसी प्रकार से परिवर्तनशील अर्थव्यवस्थाओं के आर्थिक कार्यकलापों के स्तरों में तेजी से आई गिरावट के कारण नब्बे के दशक के दौरान उनके उत्सर्जनों में 39 प्रतिशत तक की गिरावट आई।

यह स्पष्ट है कि विकसित देशों की निर्धारित मात्रा में उत्सर्जन कटौती की प्रतिबद्धताओं से ही ग्रीनहाउस गैस उत्सर्जनों के मामले में वास्तविक कटौतियों के स्तर को प्राप्त किया जा सकता है। 1997 में, कार्बन उत्सर्जन में कटौती के निमित्त विकसित देशों की प्रतिबद्धता को सुदृढ़ करने के लिए यू.एन.एफ.सी.सी.सी. के पक्षकारों ने क्योटो प्रोटोकॉल को स्वीकार किया था। क्योटो प्रोटोकॉल को विकसित देशों के कार्बन उत्सर्जन की कटौती हेतु एक महत्वपूर्ण उपाय समझा जाता है, तथापि अमरीका, जोकि ग्रीनहाउस गैसों का विश्व का सबसे बड़ा उत्सर्जक है, ने इस प्रोटोकॉल की प्रभावकारिता पर गंभीर संदेह व्यक्त करते हुए इसका अनुसमर्थन नहीं किया है। क्योटो प्रोटोकॉल के अन्तर्गत, यद्यपि विकसित देशों का यह दायित्व है कि वे अगले दशक के लिए निर्धारित मात्रा में उत्सर्जन में कटौतियों के दूसरे दौर के लिए स्वयं को प्रतिबद्ध करें (वर्तमान प्रतिबद्धताएं 2012 में समाप्त हो जाएंगी), तथापि वे इस मुद्दे पर घोर चुप्पी साधे हुए हैं। किंतु, ऐसा प्रतीत होता है कि उनका इरादा मात्रात्मक प्रत्सर्जन

---

[10] आर्टिकल 2, यूनाइटेड नेशन्स फ्रेमवर्क कन्वेन्शन ऑन क्लाइमेट चेंज।

[11] चन्द्रशेखर दासगुप्ता, 'शिफ्ट्स ऑन क्लाइमेट चेंज,' *द टेलीग्राफ,* कलकत्ता, 2 सितम्बर, 2008.

कटौती से संबंधित ऐसी प्रतिबद्धताओं, जो क्योटो प्रोटोकॉल के तहत विकसित देशों के लिए अनिवार्य हैं, से बचने और इसके साथ ही विकासशील देशों – विशेष रूप से चीन, भारत, ब्राजील और दक्षिण अफ्रीका जैसी तथाकथित उभरती अर्थव्यवस्थाओं के लिए नई प्रतिबद्धताएं लागू करने का है।[12]

जलवायु अभिसमय के अधीन, विकासशील देशों की भी कुछ प्रतिबद्धताएं हैं। इस अभिसमय में बताया गया है कि ''इस अभिसमय के अधीन विकासशील देश, पक्षकार के रूप में अपनी प्रतिबद्धताओं का जिस सीमा तक प्रभावी कार्यान्वयन करेंगे वह वित्तीय संसाधनों तथा प्रौद्योगिकी हस्तांतरण से संबंधित अभिसमय के अधीन विकसित देशों के द्वारा पक्षकारों के रूप में अपनी प्रतिबद्धताओं के प्रभावी कार्यान्वयन पर निर्भर करेगा। उसमें इस बात का ध्यान रखना होगा कि आर्थिक व सामाजिक विकास तथा गरीबी उपशमन विकासशील देश पक्षकारों की प्रथम और अध्यारोही प्राथमिकताएं हैं, इस अभिसमय में इस बात को स्वीकार किया गया है कि विकासशील देशों की तुलना में ग्रीनहाउस गैसों के उत्सर्जनों के ऐतिहासिक तथा वर्तमान हिस्से के सर्वाधिक होने की अधिक जिम्मेदारी विकसित देशों की है और जलवायु परिवर्तन की चुनौती के प्रति वैश्विक प्रतिक्रिया की लागत को पूरा करने की उनकी क्षमता भी अधिक है। जैसाकि वर्तमान प्रवृत्ति से पता चलता है, विकसित देश अपने दायित्वों को पूरा करने के बजाय, यह जिम्मेदारी विकासशील देशों पर लादने की कोशिश कर रहे हैं। लेकिन, उत्सर्जन कटौती के नाम पर आर्थिक विकास का बलिदान कर देना निश्चित रूप से विकासशील देशों की प्राथमिकता नहीं है।[13] वे आर्थिक वृद्धि और विकास के जरिए वर्तमान और भावी परिस्थितियों का सामना करने को उत्सुक हैं। जब तक इस मुद्दे का पारस्परिक रूप से समाधान नहीं कर लिया जाता, जलवायु परिवर्तन की समस्याओं के स्थायी समाधान की तलाश के लिए विश्व स्तर पर प्रयास हो पाने के मार्ग में गंभीर अड़चन बनी रहेगी।

(v) जलवायु परिवर्तन और विश्व के निर्धन

वास्तव में, वैज्ञानिक समुदाय पहले ही उन शुरुआती चेतावनी संकेतों को समझ चुका था, जिसे अब आम आदमी भी देख पा रहा है। जलवायु पर छाये खतरे का निर्धनता से गहरा संबंध है। विकासशील देशों में विश्व के लाखों लोग पहले ही जलवायु परिवर्तन के दुष्प्रभावों को भुगतने के लिए विवश हो रहे हैं। भयानक सूखा, तेज तूफान, विनाशकारी बाढ़ और खत्म हो रही आजीविका की असुरक्षा का बढ़ता दायरा मुख्य अवरोध साबित हो रहा है, जो विश्व के निर्धन लोगों को अपने लिए और अपने बच्चों के लिए बेहतर जीवन का निर्माण करने की कोशिशों को पीछे खींच रहा है।

मूल एवं अधिक ध्यान दिए जाने वाली बात यह है कि जिस तरीके से विश्व आज जलवायु परिवर्तन की समस्या का समाधान करने जा रहा है उसका निर्धन लोगों, विशेषकर विकासशील देशों के निर्धन लोगों, की मानव विकास संबंधी संभावनाओं पर सीधा असर होगा। इस समस्या से निपटने में दूरदृष्टि और सूझबूझ का अभाव विश्व की जनसंख्या के सबसे निर्धन 40 प्रतिशत यानी लगभग 2.6 अरब लोगों को एक ऐसे भविष्य की ओर धकेल देगा जिसमें उनके लिए बहुत कम अवसर होंगे। यह देशों के बीच असमानता की खाई को बढ़ा देगा और 'संपन्न' तथा 'विपन्न' लोगों के बीच के

[12]चन्द्रशेखर दासगुप्ता, 'शिफ्ट्स ऑन क्लाइमेट चेंज,' *द टेलीग्राफ,* कलकत्ता, 2 सितम्बर, 2008.

[13]फ्रैन्कलिन कुडजो और ब्राइट साइमन्स, 'यू एन क्लाइमेट चेंज प्लान्स एंड वर्ल्ड्स पूअर', *द पायोनियर,* 9 सितम्बर, 2008.

विशाल अंतर को पहले से अधिक बढ़ा देगा, और इस प्रकार एक सर्वसमावेशी तथा समतावादी विश्व व्यवस्था की स्थापना के प्रयासों को अवरुद्ध करेगा।

आज तो केवल गरीब ही वैश्विक तापवृद्धि और जलवायु परिवर्तन के प्रभावों को भुगत रहे हैं। लेकिन कल सारी मानवता को ही इसे भुगतना पड़ेगा। धरती के वातावरण में ग्रीनहाउस गैसों की तेजी से वृद्धि होने से भावी पीढ़ियों के लिए जलवायु का पूर्वानुमान बुनियादी तौर पर बदल रहा है। ये ऐसी अननुमेय घटनाएं हैं जो पारिस्थितिकीय विपत्ति और जनांकिकीय विस्थापन को जन्म दे सकती हैं, मानव के रहन-सहन के ढंग को बदल सकती है और राष्ट्रीय अर्थव्यवस्थाओं की क्षमता को बुरी तरह से प्रभावित कर सकती हैं।

प्रख्यात अर्थशास्त्री जेफ़री साच्स ने अर्थशास्त्र और पर्यावरण के बीच गहरे संबंध पर कुछ अंतर्दृष्टिपूर्ण टिप्पणियां की हैं, जिनमें विश्व स्तर पर वैश्विक समस्याओं का समाधान करने के लिए मानवता की सराहना की गई है। उनका विचार यह है कि विश्व की जनसंख्या, जलवायु परिवर्तन, निर्धनता और संसाधनों का इस्तेमाल—इन सभी का आपस में गहरा संबंध है। विश्व का छठा भाग अत्यधिक गरीबी की चपेट में है और वैश्विक आर्थिक विकास से अछूता है। गरीबी का फंदा खुद गरीब लोगों के लिए तो त्रासदीपूर्ण कठिनाइयां उत्पन्न कर ही रहा है और उससे बाकी दुनिया के लिए जोखिम काफी बढ़ रहा है।[14]

यह अनुमान लगाया जाता है कि दुनिया के गरीब जलवायु परिवर्तन के हानिकारक प्रभावों से सबसे पहले और सबसे अधिक प्रभावित होंगे। यह विडंबना ही है कि समृद्ध राष्ट्र और उनके नागरिक सर्वाधिक मात्रा में ग्रीनहाउस गैसों का उत्सर्जन करते हैं; लेकिन निर्धन राष्ट्रों और उनकी जनता को जलवायु परिवर्तन की भारी कीमत चुकानी पड़ती है। यद्यपि विश्व के गरीब हल्के कार्बन पदचिह्न से धरती पर विचरण करते हैं, लेकिन हमारी पारिस्थितिकीय परस्पर-निर्भरता के अस्थायी प्रबंधन की मार उन्हें ही झेलनी पड़ती है। समृद्ध देशों में, जलवायु परिवर्तन की चुनौतियों का मुकाबला करना कुल मिलाकर थर्मोस्टेट के समायोजन, अधिक लंबे और उष्ण ग्रीष्म से जूझने और मौसमी बदलावों पर निगरानी रखने का मामला ही है। समृद्ध देशों के शहरों के सामने भविष्य में पेश आने वाले जोखिम कम ही होंगे। लेकिन तूफान और बाढ़ से जुड़े जलवायु परिवर्तन के असली खतरे गंगा, मेकांग और नील के विशाल नदी डेल्टाओं में ग्रामीण समुदायों को और विकासशील देशों में फैली शहरी मलिन बस्तियों के निवासियों को झेलने पड़ रहे हैं।

जलवायु परिवर्तन से जुड़े बढ़ते जोखिम और खतरे भौतिक प्रक्रियाओं के परिणाम हैं। साथ-साथ वे मनुष्य के कार्य और उसकी पसंद के परिणाम भी हैं।[15] इस समझ से नैतिक उत्तरदायित्व की भावना आनी चाहिए, ऐसी भावना जो उन ऊर्जा संबंधी नीतियों पर विचार करने और उन्हें बदलने के लिए प्रेरित करे जो मौजूदा और भावी पीढ़ियों के मानव समुदाय के कमजोर वर्गों को नुकसान पहुंचा रहे हैं।

(vi) जलवायु परिवर्तन, व्यापार और व्यापार संरक्षणवाद

ऐसे खास मुद्दे और तनाव के बिंदु रहे हैं जो अंतर्राष्ट्रीय व्यापार वार्ताओं में अंतर्राष्ट्रीय व्यापार और जलवायु परिवर्तन के दौर के बीच उभरते रहे हैं। जलवायु परिवर्तन उपायों के बारे में कई अंतर्राष्ट्रीय

[14]जेफरी डी. साच्स, कॉमन वेल्थ: इकोनॉमिक्स फॉर ए क्राउडेड, प्लानेट, एलेन लेन, 2008.पृ॰ 6.

[15]मानव विकास प्रतिवेदन, यू॰एन॰डी॰पी॰, 2007/2008, पृ॰ 18.

व्यापार संबंधी विवाद हुए हैं, जो व्यापार और जलवायु परिवर्तन संबंधी नीतियों के बीच पारस्परिक सहयोगी संबंध हासिल करने के लिए अत्यंत गंभीर चुनौती पेश करेंगे। व्यापार और जलवायु परिवर्तन-वाद उस अवधारणा का भी विस्तार कर रहा है जिसे 'अनुचित' व्यापार कहा जाता है। दशकों तक विश्व व्यापार संगठन प्रणाली और व्यापार करने वाले ज्यादातर राष्ट्रों के घरेलू कानूनों, दोनों में शामिल अंतर्राष्ट्रीय व्यापार विधि में यह माना गया है कि आयातों का कतिपय स्तर से नीचे मूल्य-निर्धारण करना 'अनुचित' व्यापार का एक रूप है (चाहे वह विदेशी आयातकों द्वारा 'प्रतिपाटन' के कारण हो अथवा विदेशी सरकारों द्वारा प्रदान की गई राज-सहायता के कारण हो), जिसका समाधान किया जाना चाहिए, जहां उसके कारण घरेलू उद्योगों को नुकसान होता है। अनुचित व्यापार की अवधारणा विशुद्ध रूप से इस पर आधारित है कि किसी आयातित उत्पाद का मूल्य-निर्धारण कैसे किया जाता है। जलवायु परिवर्तन संबंधी सरोकारों के कारण अब अनुचित व्यापार की अवधारणा का विस्तार करते हुए इस बात को भी ध्यान में रखा जाने लगा है कि आयातित उत्पादों का निर्माण कैसे हुआ है - विशेषकर इस बात का कि उनके विनिर्माण से जुड़ी ग्रीनहाउस गैसों की मात्रा कितनी है और उनकी प्रकृति कैसी है।

जलवायु परिवर्तन को रोकने के नाम पर, अनुचित व्यापार का एक अन्य पहलू संरक्षणवादी उपायों के माध्यम से परिलक्षित होता है। जलवायु परिवर्तन के समाधान के लिए विशेषकर यूरोप में प्रयुक्त हो रहे कुछ सहायक साधन बिल्कुल अनोखे प्रतीत होते हैं। **'फूड माइल्स'** नामक एक अवधारणा है। इस उपाय में यह देखा जाता है कि कैसे खाद्य पदार्थ खेत से घर तक पहुंचते हैं। यूरोप में उपभोक्ताजनित एक अभियान चलाया जा रहा है जो इस विचार पर आधारित है कि खाद्य उत्पादों को जितनी अधिक दूर ले जाया जाता है, पर्यावरण को उतनी अधिक क्षति पहुंचती है। उपभोक्ताओं को घर के आस-पास उत्पादित उत्पादों को खरीदने के लिए प्रोत्साहित किया जा रहा है। ऐसा जलवायु परिवर्तन के लिए पर्यावरणीय चिन्ता की आड़ में संरक्षणवाद को बढ़ावा देने के लिए किया जा रहा है। तथापि, यू॰के॰ के पर्यावरण, खाद्य और ग्रामीण कार्य विभाग (डी ई एफ आर ए) के अनुसार, 'फूड माइल्स' अवधारणा में विकृति आ गयी है क्योंकि यह केवल खाद्य पदार्थों द्वारा तय की गई दूरी पर ध्यान केन्द्रित करता है, जो जीवन्तता बनाये रखने का उपयुक्त संकेतक नहीं है।[16]

कार्बन उत्सर्जन में कमी का अनुपालन न होने से संरक्षणवादी भावनाएं उद्वेलित हुई हैं। यूरोपीय संघ (ईयू) एकपक्षीय व्यापार उपाय करने की धमकी दे रहा है जो 2020 तक उद्योगों द्वारा कार्बन उत्सर्जन कम करने के उसके महत्वाकांक्षी अभियान के एक हिस्से के रूप में आयात में 20 प्रतिशत कमी ले आएगा। यूरोपीय संघ (ई॰ यू॰) के नेतागण ऐसे देशों पर कार्बन कर या भत्ता लगाए जाने की संभावना का बार-बार उल्लेख करते रहे हैं जो क्योटो प्रोटोकॉल के अनुसार उत्सर्जन में कटौती करने संबंधी अपेक्षाओं को पूरा नहीं कर रहे हैं। इन सुझावों की यू॰एस॰ के व्यापार संबंधी अधिकारियों ने कड़ी आलोचना की है और उन्होंने यह चेतावनी दी है कि इन प्रस्तावों से पर्यावरण संरक्षण के नाम पर विश्व व्यापार संगठन से असंगत व्यापार के संरक्षणवाद का मार्ग सुगम बन सकता है।[17]

प्रतिस्पर्द्धात्मक चिन्ताओं से संबंधित एक अन्य क्षुब्धकारी प्रवृत्ति है जो विकसित और विकासशील राष्ट्रों के बीच हो रही व्यापार वार्ताओं में निर्लज्जतापूर्वक परिलक्षित हो रही है। वैश्विक बाजार में प्रतिस्पर्द्धा

---

[16]एक्ज्यूकिटिव समरी ऑफ द रिपोर्ट ऑन 'द वेलिडिटी ऑफ फूड माइल्स एस एन इन्डीकेटर ऑफ सस्टेनेबल डेवलपमेंट', यू॰के॰ डिपार्टमेंट फॉर द एनवायरनमेंट, फूड एंड रूरल एफेयर्स (डेफरा), जुलाई, 2005.

[17]'ट्रेड लॉ एंड क्लाइमेट चेंज : कनवरजेंस ऑर कनफ्लिक्ट?' बर्नड जी॰ जानजेन, एकिन गंप स्ट्रास हाउर एंड फेल्ड एल एल पी (*www.metrocorpcounsel.com/current*).

बनाए रखने के प्रयास के रूप में उपभोक्ताओं द्वारा 'हरे' उत्पादों के लिए की जा रही मांगें बढ़ रही हैं। इससे विकासशील देशों पर अपने उद्योगों के पर्यावरणीय प्रभाव को निर्धारित करने का दबाव सतत् रूप से बढ़ रहा है। किसी वैज्ञानिक आधार पर ध्यान दिए बिना विकसित देशों ने यह निर्णय लिया कि विकासशील देशों से निर्यातित उत्पादों की पर्यावरणीय लागत अधिक होती है। पर्यावरणीय चिन्ता के रूप में, वे व्यापार संरक्षणवाद को बढ़ावा देते हैं। इसी प्रकार के तर्क विकासशील देशों के श्रम मानकों के संबंध में बहुपक्षीय व्यापार वार्ताओं में विकसित देशों द्वारा पुरजोर रूप से पेश किए गए थे। पर्यावरण और श्रम मानकों के नाम पर व्यापार के लिए संरक्षणवादी बाधाएं पैदा की जा रही हैं। इससे निर्धन देशों की विकास आकांक्षाओं पर तुषारपात हो सकता है। इस संबंध में संतुलन स्थापित किए जाने की आवश्यकता है कि निवेश और व्यापार कैसे औद्योगिकीकृत विश्व द्वारा संरक्षणवाद को बढ़ावा दिए बिना पर्यावरण का संरक्षण कर सकता है।

इससे संबद्ध बहुपक्षीय व्यापार समझौतों की भेदभावपूर्ण विशेषताओं को हटाना तथा सभी पणधारियों के बीच इनकी स्वीकार्यता को बढ़ाना अत्यावश्यक हो गया है। अन्यथा, इससे विकसित और विकासशील देशों को बढ़ावा मिलने लगेगा कि वे अधिमान्य व्यापार करारों (पी टी ए) के नए प्रतिमानों को स्वीकार कर लें। यूरोपीय संघ (ई यू), उत्तर अटलांटिक मुक्त व्यापार करार (नाफ्टा), दक्षिण-पूर्व एशियाई राष्ट्र संघ (आसियान), आदि ने उसी पथ पर दूसरों को प्रोत्साहित करते हुए बड़े व्यापार ब्लॉक बना दिए हैं। किसी अधिमान्य व्यापार करार में किसी देश के शामिल होने के सापेक्षिक गुण-दोष होते हैं। तथापि, यह आशंका व्यक्त की जाती है कि अधिमान्य व्यापार करार वाले देशों के बीच गठबंधन होने से संरक्षणवादियों की मजबूत लॉबी बन सकती है जिसे तोड़ना अत्यधिक कठिन होगा; ये संरक्षणवादी समूह राजनीतिक रूप से अधिक भयानक हो सकते हैं। किसी देश को अयोग्य उत्पादन प्रतिरूप में सीमित कर देने से उसके किसी ऐसी संरचना में समायोजित होने की क्षमता प्रभावित हो जाती है जो वैश्विक मुक्त व्यापार के तहत अधिक प्रतिस्पर्द्धात्मक होगी।[18]

व्यापार संरक्षणवाद स्वत: वैश्विक मुक्त व्यापार और सतत् विकास की भावना के विपरीत है। सतत् विकास के लिए दीर्घकालिक वचनबद्धता के साथ मुक्त एवं पारदर्शी अन्तर्राष्ट्रीय आर्थिक व्यवस्था नए जलवायु परिवर्तन संबंधी ज्ञान एवं प्रौद्योगिकियों के त्वरित प्रसार तथा वातावरण में उपस्थित ग्रीनहाउस गैसों के सान्द्रण को उस स्तर तक स्थिर करने की निम्नतम औसत लागत की कुंजी है जो जलवायु व्यवस्था के साथ खतरनाक मानवीय हस्तक्षेप को रोकने के उपयुक्त हो सकता है।[19]

(vii) जलवायु परिवर्तन एवं व्यवसाय और उद्योग पर्यावरण

जलवायु परिवर्तन और वर्तमान व्यवसाय के बीच अन्तरापृष्ठ एक अन्य महत्वपूर्ण आयाम है। जलवायु परिवर्तन की चुनौतियों का प्रभावी ढंग से मुकाबला करने के लिए व्यापार और उद्योगों, विशेषत: विनिर्माण क्षेत्र, को ग्रीनहाउस गैसों के उत्सर्जन को कम करने की आवश्यकता है। उन्हें स्वच्छ विकास तंत्रों के अतिरिक्त पर्यावरण-अनुकूल प्रौद्योगिकियों में निवेश करके कार्बन व्यापार को शुरू किए जाने की आवश्यकता है। तेजी से बदलती वैश्विक अर्थव्यवस्था में उत्पादों की प्रतिस्पर्द्धा को बनाए रखने के प्रयोजन से उन्हें गहन ऊर्जा उत्पादों एवं प्रक्रियाओं को छोड़ने तथा अपने संव्यवहार में पर्यावरण हितैषी

[18]एन॰के॰ सिंह, प्रिफरेन्शियल ट्रेड एग्रीमेंट्स: स्टम्बलिंग ब्लॉक्स ऑर बिल्डिंग ब्लॉक्स? *दि इंडियन एक्सप्रेस,* 24 अप्रैल, 2005.

[19]इनटरगवर्नमेंटल पैनल ऑन क्लाइमेट चेंज, थर्ड असेसमेंट रिपोर्ट, वर्किंग ग्रुप्स III ''मिटिगेशन ऑफ क्लाइमेट चेंज,'' समरी फॉर पॉलिसी मेकर्स, 2001.

परिवर्तनों को अपनाने, ऊर्जाक्षम प्रौद्योगिकियों, नवीनतम हरित विनिर्माण पद्धतियों, आदि को बढ़ावा देने की आवश्यकता है।[20]

(viii) जलवायु परिवर्तन का आर्थिक पहलू

गंभीर पर्यावरणीय मुद्दा होने के अलावा, जलवायु परिवर्तन में सामाजिक और आर्थिक मूल्य भी शामिल होता है। यह मामला अधिक जटिल हो जाता है क्योंकि जलवायु परिवर्तन संपूर्ण विश्व को प्रभावित करता है। दि स्टर्न रिव्यू ऑन दि इकोनॉमिक्स ऑफ क्लाइमेट चेंज में विश्व अर्थव्यवस्था पर जलवायु परिवर्तन और वैश्विक तापवर्द्धन के प्रभाव का मूल्यांकन किया गया है और इसमें वातावरण में ग्रीनहाउस गैस के स्थिरीकरण के आर्थिक पहलू का पता लगाया गया है। रिव्यू में यह निष्कर्ष निकाला गया है कि जलवायु परिवर्तन का समाधान वहनीय है। यह निष्क्रियता लागत से अधिक वहनीय हो सकता है। इसमें सुझाव दिया गया है कि न्यूनीकरण को निवेश के रूप में देखा जा सकता है। इस समय हुए व्यय को कुछ आगामी दशकों में अधिक भयानक परिणामों के खतरों को दूर करने हेतु उस पर किए जाने वाले व्यय के रूप में देखा जाना चाहिए। जलवायु अव्यवस्था को रोकने की वर्तमान लागत विश्व की सकल घरेलू उत्पाद का लगभग 1 प्रतिशत है जबकि निष्क्रियता की लागत उस राशि का लगभग 20 गुना हो सकती है।[21] स्टर्न रिव्यू में अल्प-कार्बन मितव्यय के अन्तरण के प्रबंधन में शामिल जटिल नीतिगत चुनौतियों पर विचार किया गया है जो सुनिश्चित करता है कि समाज जलवायु परिवर्तन के परिणामों, जिनसे कभी भी बचा नहीं जा सकता, के अनुसार ढल सकता है।

रिपोर्ट में आगे यह उल्लेख किया गया है कि न्यूनीकरण के लिए नीति के तीन तत्व आवश्यक हैं: कार्बन मूल्य निर्धारण, प्रौद्योगिकी नीति और व्यवहारिक परिवर्तन के लिए बाधाओं को दूर करना।

(क) कार्बन का मूल्य निर्धारण

कर, व्यापार अथवा विनियमन के माध्यम से कार्बन का मूल्य निर्धारण करना जलवायु-परिवर्तन नीति के लिए अनिवार्य आधार है। आर्थिक दृष्टि से, ग्रीनहाउस गैसें बाह्य रूप से ग्रीनहाउस गैसों का उत्सर्जन करने वाले ही जलवायु परिवर्तन के कारक हैं और परिणामत: विश्व तथा भावी पीढ़ियों पर लागत अधिरोपित कर रहे हैं, परंतु वे स्वयं अपने इन कृत्यों के सम्पूर्ण परिणामों को वहन नहीं करते हैं।

अत:, कार्बन का यथोचित मूल्य निर्धारित करने — स्पष्टतया कर या व्यापार के माध्यम से, अथवा अप्रत्यक्षत: विनियमन के माध्यम से — का आशय यह होगा कि लोगों को अपने कृत्यों का पूरा-पूरा सामाजिक मूल्य चुकाना होगा। इसका परिणाम यह होगा कि व्यक्ति विशेष और व्यवसायी उच्च-कार्बन वाली वस्तुओं और सेवाओं से इतर निम्न-कार्बन वाले विकल्पों में निवेश करेंगे।

(ख) प्रौद्योगिकी नीति

जलवायु परिवर्तन नीति का दूसरा घटक प्रौद्योगिकी नीति है जिसके अधीन अनुसंधान और विकास से लेकर निदर्शन और शुरुआती चरण का उपयोग भी शामिल है। उत्सर्जन में आवश्यक भारी कटौती प्राप्त करने के लिए निम्न-कार्बन प्रौद्योगिकियों का विस्तृत पैमाने पर विकास और उपयोग अनिवार्य है।

---

[20]कार्बन मार्किट: इमर्जिंग सेक्टर्स एंड ट्रेंड्स, एसोचैम, 2008, पृ॰ 9.

[21]द स्टर्न रिव्यू, www.hm-treasury.gov.uk.

वर्तमान परिदृश्य में अभी अनेक निम्न-कार्बन प्रौद्योगिकियां, जीवाश्म ईंधन विकल्पों से अधिक खर्चीली हैं। कार्बन मूल्य निर्धारण से कार्बन में कमी लाने के लिए नई प्रौद्योगिकियों में निवेश करने में प्रोत्साहन मिलता है; वास्तव में, इसके बिना ऐसे निवेश करने का कोई आधार नहीं है।

(ग) **व्यवहार संबंधी परिवर्तन**

विश्वसनीय सूचना का अभाव, लेनदेन की लागत और व्यवहार संबंधी एवं संगठनात्मक निष्क्रियता व्यवहार संबंधी परिवर्तन में बाधक हैं, जिन्हें ऊर्जा कार्यकुशलता के हित में दूर किए जाने की आवश्यकता है। इन बाधाओं का प्रभाव, लाभकारी ऊर्जा, कार्यकुशलता उपायों की संभाव्यता को अधिप्राप्त करने में अक्सर मिल रही असफलता में स्पष्ट रूप से देखा जा सकता है। लेबल लगाने तथा सर्वोत्तम कार्य प्रणालियों के परस्पर अपनाए जाने के साथ-साथ अन्य नीतियों से उपभोक्ताओं और व्यवसायियों को ठोस निर्णय लेने तथा निम्न-कार्बन और उच्च कार्यकुशलता वाली वस्तुओं और सेवाओं के लिए प्रतिस्पर्धी बाजार को प्रोत्साहित करने में मदद मिलेगी।

(ix) **राष्ट्रीय ऊर्जा नीतियां और जलवायु परिवर्तन**

ऊर्जा के लिए मुख्यत: जीवाश्म ईंधन पर हमारी निर्भरता से उत्पन्न जलवायु परिवर्तन वर्तमान सदी की एक भयावह चुनौती है जिसका सामना सम्पूर्ण मानव समाज द्वारा किया जा रहा है। सम्पूर्ण विश्व जिस तरह से इस समस्या का समाधान करता है, उससे वैश्विक समाज अर्थव्यवस्था और पर्यावरण पर व्यापक प्रभाव पड़ेगा। अत: जलवायु परिवर्तन पर, सरकारों के प्रत्येक निर्णय में, विशेषकर ऊर्जा नीतियों से संबंधित सभी निर्णयों में, ध्यान दिए जाने की आवश्यकता है। सभी देशों को अत्यधिक सक्रिय और भविष्योन्मुखी ऊर्जा नीतियां अपनाने की आवश्यकता है जिससे मौजूदा अस्थायी जीवाश्म ईंधन ऊर्जा प्रणाली से वैकल्पिक ऊर्जा स्रोतों पर आधारित पारिस्थितिकी एवं आर्थिक रूप से स्थायी प्रणाली की ओर सुगम परिवर्तन उत्तरोतर आसान होगा। ''अकार्बनीकरण''[22] के लिए समग्र चुनौती ऊर्जा ''क्रांति'', हमारी अर्थव्यवस्थाओं का पुनर्गठन करना है।

पूरे विश्व में, जीवाश्म ईंधन सर्वाधिक राजसहायता-प्राप्त ऊर्जा स्रोत हैं जिन पर प्रतिवर्ष कुल 180 से 200 बिलियन अमरीकी डॉलर राजसहायता का अनुमान है। कुछ लोग मानते हैं कि विश्वभर में बड़ी मात्रा में ऊर्जा राजसहायता के फलस्वरूप अंतिम उपभोक्ताओं के जीवाश्म ईंधन अपेक्षाकृत कम कीमत पर उपलब्ध होते हैं जिससे इन ईंधनों की और अधिक खपत होती है, कार्बन डाईऑक्साइड तथा अन्य ग्रीनहाउस गैस के उत्सर्जन में वृद्धि होती है और जलवायु परिवर्तन में यह योगदान देती है।[23] इसलिए, वे कुशल और वहनीय ऊर्जा मूल्य निर्धारण पर मुख्य रूप से ध्यान देते हुए राष्ट्रीय ऊर्जा नीतियों में सुधार करने की मांग करते हैं। इस दृष्टिकोण के अनुसार, ''कुशल ऊर्जा मूल्य निर्धारण एक ऐसा नहीं टाला जा सकने वाला सिद्धांत है जिसपर सतत् आर्थिक विकास का भविष्य आधारित है।''[24]

---

[22]कीनोट स्पीच बाई एन्जल गुरिया, सेक्रेटरी-जनरल ओ॰ई॰सी॰डी॰, वर्ल्ड एनर्जी काउंसिल एनर्जी लीडर्स समिट, लन्दन, 16 सितम्बर, 2008.

[23]एनर्जी सब्सिडीज़: देयर मैग्नीट्यूड, हाउ दे अफेक्ट एनर्जी इन्वेस्टमेंट एंड ग्रीनहाउस गैस एमीशन्स एंड प्रॉस्पेक्ट्स फॉर रिफॉर्म, फाइनल रिपोर्ट यू॰एन॰एफ॰सी॰सी॰सी॰ सचिवालय, 10 जून, 2007.

[24]एन॰ के॰ सिंह, 'द पॉलिटिक्स ऑफ चेंज: ए रिंगसाइड व्यू, नई दिल्ली: पेंग्विन वाइकिंग, 2007, पृ॰ 124.

इसके विरुद्ध भी एक दृष्टिकोण है जो कहता है कि केवल जीवाश्म ईंधन पर राजसहायता को कम करना ऊर्जा प्रधान गतिविधियों और कार्बन उत्सर्जनों के लिए एक व्यवहार्य निवारक उपाय नहीं हो सकता है। विकसित देशों में बहुत हद तक प्रतिव्यक्ति आय में वृद्धि और लोगों के रहन-सहन के बढ़े हुए स्तर के परिणामस्वरूप जीवाश्म ईंधन का सघन उपयोग हुआ है और अन्य उच्च ऊर्जा प्रधान गतिविधियां की जा रही हैं। जीवन शैली में परिवर्तन लाकर और दृष्टिकोण में परिवर्तन लाकर, न कि राजसहायताओं में कमी करके, ऊर्जा उपयोग के तरीके में अधिक परिवर्तन लाया जा सकता है।

वहनीय ऊर्जा सुरक्षा के हितार्थ, सभी देशों को अपनी अर्थव्यवस्थाओं में व्याप्त निरपेक्ष दशाओं को ध्यान में रखते हुए कुशल ऊर्जा मूल्य निर्धारण के लक्ष्य को साधने की आवश्यकता है। परंतु, ऊर्जा मूल्य निर्धारण में सुधार लाना कोई आसान काम नहीं है। ऊर्जा राजसहायता संबंधी सुधार का कार्यान्वयन एक कठिन चुनौती बनी हुई है क्योंकि कई उदाहरणों में, सरकारें प्रभावित वर्गों और उनके समर्थक निकायों से पुरजोर प्रतिरोध के अलावा सामाजिक और आर्थिक मजबूरियों का भी सामना करती रही हैं। राज्य द्वारा दी जाने वाली राजसहायता को इस प्रकार प्राथमिकता देने का प्रयास करना चाहिए कि अधिकाधिक नवीकरणीय ऊर्जा स्रोतों और ऊर्जाक्षम प्रौद्योगिकियों को समर्थन मिल सके जिससे अंततः ग्रीनहाउस गैस के उत्सर्जनों में कमी लाने में सहायता मिलेगी। स्वच्छ ऊर्जा हेतु लक्षित राजसहायता उत्सर्जनों में कमी लाने में महत्वपूर्ण भूमिका निभा सकती है।

III

जलवायु परिवर्तन के प्रभाव

यद्यपि जलवायु परिवर्तन अनेक प्रकार की चुनौतियां उत्पन्न करता है, वर्तमान पत्र में विशिष्ट रूप से कृषि और खाद्य सुरक्षा, जल समस्या और जल संबंधी असुरक्षा, समुद्र के बढ़ते स्तर, जैव-विविधता और मानव स्वास्थ्य जैसे मुद्दों पर ध्यान केन्द्रित किया जाएगा, जो सामान्य रूप से विकासशील देशों और विशेषकर भारत के परिप्रेक्ष्य में अत्यधिक प्रासंगिक हैं।

(i) कृषि और खाद्य सुरक्षा

जलवायु परिवर्तन से तापमान, वर्षा और ग्लेशियर अपवाह समेत कृषि को प्रभावित करने वाली दशाओं पर महत्वपूर्ण प्रभाव पड़ने की संभावना है। यह कृषि को एक से अधिक तरीकों से प्रभावित करता है। यह सिंचाई हेतु जल, सौर विकिरण की मात्रा, जो पौधे के विकास को प्रभावित करती है तथा कृषि निविष्टियों के साथ-साथ नाशी जीवों की व्याप्तता को प्रभावित करके कतिपय क्षेत्रों में उगाई जा सकने वाली फसल की उपज तथा फसलों की किस्मों को प्रभावित कर सकता है।

बढ़ती हुई ग्रीनहाउस गैसों के कारण उत्पन्न तापमान-वृद्धि से क्षेत्र-दर-क्षेत्र भिन्न-भिन्न रूप से फसलों के प्रभावित होने की संभावना है। उदाहरण के लिए, शीतोष्ण क्षेत्रों में सामान्य तापवर्धन (माध्य तापमान में 1 से 3^0 सें॰ की वृद्धि) से फसल की पैदावार को लाभ पहुंचने की आशा रहती है जबकि निचले अक्षांशों में, विशेषकर मौसमी शुष्क उष्ण कटिबंधों में सामान्य तापमान वृद्धियों (1 से 2^0 सें॰) से भी प्रमुख खाद्यान्न फसलों पर नकारात्मक प्रभाव पड़ने की संभावना रहती है। 3^0 सें॰ अधिक के तापवर्धन से सभी क्षेत्रों में उत्पादन पर नकारात्मक प्रभाव पड़ने की संभावना रहती है।[25] आई पी सी सी, 2001 के तृतीय मूल्यांकन प्रतिवेदन में यह निष्कर्ष दिया गया कि जलवायु परिवर्तन का कृषि उत्पादों में कमी आने की दृष्टि से निर्धनतम देशों पर अत्यधिक दुष्प्रभाव पड़ेगा। प्रतिवेदन में दावा किया गया है कि घटी हुई जल उपलब्धता और नवीन अथवा परिवर्तित कीटनाशी जीव व्याप्ति के कारण अधिकतर उष्णकटिबंधीय तथा उपोष्ण कटिबंधीय क्षेत्रों में फसल पैदावार कम हो जाएगी। दक्षिण एशिया में चावल, बाजरा और मक्का जैसे अनेक क्षेत्रीय मुख्य आहार की क्षति 2030 तक 10 प्रतिशत से अधिक हो सकती है।[26]

जलवायु परिवर्तन के परिणामस्वरूप, हिमाच्छादित भूमि की मात्रा में कमी आने के कारण उच्च अक्षांश वाले क्षेत्रों में कृषि-योग्य भूमि की मात्रा में वृद्धि होने की संभावना है। साथ ही, समुद्र स्तर के बढ़ने के परिणामस्वरूप समुद्र-तटीय क्षेत्रों में कृषि-योग्य भूमि में कमी आना निश्चित है। बढ़े हुए समुद्र स्तर के कारण क्षरण, तटों के डूबने, भौम जल स्तर की लवणता से निम्न ऊंचाई वाली भूमि के जलमग्न हो जाने से मुख्य रूप से कृषि प्रभावित हो सकती है।

---

[25]आई॰ पी॰ सी॰ सी॰ चतुर्थ असेसमेंट रिपोर्ट, 2007 पृ॰ 38.

[26]क्लाइमेट चेंज एंड एग्रीकल्चर (http.en.wikipedia.org/wiki/climate-change-and-agriculture).

हाल के अध्ययन में इंटरनेशनल कमीशन फॉर स्नो एंड आइस (आई॰ सी॰ एस॰ ई॰) ने सूचित किया कि हिमालय के ग्लेशियर—जो एशिया की सबसे बड़ी नदियों, गंगा, सिंधु, ब्रह्मपुत्र यांग्जी, मिकांग, साल्वीन और येलो, के शुष्क मौसम के दौरान मुख्य जल स्रोत हैं — अन्य किसी स्थान की अपेक्षा अधिक तेजी से संकुचित हो रहे हैं और यदि स्थिति इसी प्रकार बनी रही तो 2035 तक वे पूर्णत: लुप्त हो सकते हैं।[27] यदि पूर्वानुमान सही है, तो इसके प्रभाव के परिमाण को उन लोगों की संख्या मात्र से ही मापा जा सकता है, जो इससे प्रभावित होंगे। लगभग 2.4 बिलियन लोग हिमालय की नदियों के अपवाह घाटी में निवास करते हैं। उपर्युक्त पूर्वानुमान निश्चित रूप से कृषि के लिए गंभीर खतरा उत्पन्न करते हैं, जिनसे मानव जीवन पर कई प्रकार से प्रभाव पड़ेगा एक सर्वाधिक महत्वपूर्ण प्रभाव खाद्य सुरक्षा है।

खाद्य सुरक्षा के लिए कृषि दो तरह से महत्वपूर्ण है: यह भोजन तो मुहैया कराती ही है, साथ ही विश्व के कुल कार्यबल में से 38.7 प्रतिशत कार्यबल के लिए आजीविका का मुख्य स्रोत है। एशिया और प्रशांत क्षेत्र में, यह हिस्सा लगभग 50 प्रतिशत है और सब-सहारा अफ्रीका में, लगभग दो-तिहाई (63 प्रतिशत) कार्यशील जनसंख्या अभी भी कृषि से ही अपनी आजीविका चलाती है।[28] यदि एशिया और अफ्रीका के अल्प आय वाले विकासशील देशों में कृषि उत्पादन जलवायु परिवर्तन के कारण प्रतिकूल रूप से प्रभावित होता है, तो बड़ी संख्या में ग्रामीण निर्धन लोगों की आजीविका खतरे में पड़ जाएगी और खाद्य असुरक्षा के प्रति उनका जोखिम कई गुना बढ़ जाएगा।

(ii) भारतीय कृषि पर प्रभाव

कृषि भारतीय अर्थव्यवस्था का मुख्य आधार है और यह भारत की जनसंख्या के एक बड़े वर्ग को भोजन तथा आजीविका मुहैया कराती है। जलवायु परिवर्तन का प्रभाव, जिसे हाल ही में महसूस किया गया है, इस देश की कृषि पर विविध रूप से प्रतिकूल असर डालने की अपार क्षमता रखता है। चूंकि भारत में कृषि-योग्य भूमि का एक बड़ा भाग वर्षा पर निर्भर होता है, अत: कृषि की उत्पादकता वर्षा और इसके स्वरूप पर निर्भर होती है। कृषि न केवल वर्षा जल की समग्र मात्रा में वृद्धि या कमी से बल्कि वृष्टि के समय में परिवर्तनों से भी प्रतिकूल रूप से प्रभावित होती है। वृष्टि पैटर्नों में कोई भी परिवर्तन होने पर कृषि के लिए गंभीर खतरा पैदा हो जाता है और इसीलिए अर्थव्यवस्था और खाद्य सुरक्षा के लिए भी गंभीर खतरा पैदा हो जाता है। ग्रीष्मकालीन वृष्टि भारत की कुल वार्षिक वृष्टि का लगभग 70 प्रतिशत होती है और यह भारतीय कृषि के लिए अत्यंत महत्वपूर्ण होती है। तथापि, अध्ययनों में वर्ष 2050 के दशक तक ग्रीष्मकालीन वर्षा में गिरावट का पूर्वानुमान लगाया गया है।[29] वर्ष 2050 के दशक तक पश्चिमी भारत के अर्द्ध-शुष्क क्षेत्रों में सामान्य से अधिक वर्षा होने की संभावना है, क्योंकि तापमान बढ़ता जा रहा है, जबकि मध्य भारत में शीतकालीन वर्षा में 10-20 प्रतिशत की कमी होगी।[30] अपेक्षाकृत जलवायु संबंधी लघु परिवर्तनों के परिणामस्वरूप विशेष रूप से उत्तर-पश्चिम भारत जैसे शुष्क और अर्द्ध-शुष्क क्षेत्रों में वृहत् जल संसाधनों की समस्याएं पैदा हो सकती हैं।

---

[27]खोडे, किशन, क्लाइमेट चेंज एंड द राइट टू डेवलपमेंट: हिमालयन ग्लेसियल मेल्टिंग एंड द फ्यूचर ऑफ डेवलपमेंट ऑन द तिबेतन प्लेटो (यू॰ एन॰ डी॰ पी॰ - ह्यूमन डेवलपमेंट रिपोर्ट 2007/2008)।

[28]ग्लोबल एम्पलॉयमेंट ट्रेन्ड्स: ब्रीफ (आईएलओ, जनवरी, 2007, पृ॰ 12)।

[29]क्लाइमेट चेंज एंड इट्स इम्पैक्ट ऑन इंडिया (http://www.greenpeace.org/india/campaigns/choose-positive-energy/what-is-climate-is-climate-change...).

[30]इम्पैक्ट्स ऑफ क्लाइमेट चेंज: वैस्टर्न एंड सेन्ट्रल इंडिया (www.cseindia.org/programme/geg/pdf/western.pdf).

अधिकांश फसलों की उत्पादकता, तापमान में वृद्धि और विशेष रूप से सिन्धु-गंगा के मैदानी क्षेत्रों में जल की उपलब्धता में कमी के आने से घट सकती है। इसके अलावा, खरीफ फसलों की तुलना में रबी की उत्पादकता में गिरावट आएगी। बढ़ते तापमान के कारण सदृश उत्पादन लक्ष्यों हेतु उर्वरकों की मांग में वृद्धि होगी और इसके परिणामस्वरूप ग्रीनहाउस गैसों के उत्सर्जनों, अमोनिया के वाष्पीकरण और फसल उत्पादन की लागत में वृद्धि होगी।[31] सूखे, बाढ़, तूफानों और चक्रवातों की बारम्बारता में वृद्धि होने के कारण कृषि उत्पादन की परिवर्तनशीलता में वृद्धि होने की संभावना है। इसलिए, हमें जीवन की रक्षा करने और आजीविकाएं बनाए रखने पर समान रूप से बल देना होगा।[32]

(iii) जल की कमी और जल संबंधी असुरक्षा

जल की सुलभता का अभाव विशेष रूप से विकासशील देशों में एक क्षोभकारी मुद्दा है। वर्तमान में, विश्वभर में लगभग 1.1 बिलियन की विशाल जनसंख्या के लिए जल दुर्लभ है और 2.6 बिलियन लोग स्वच्छता सेवा से वंचित हैं। जलवायु परिवर्तन के परिणामस्वरूप जल संसाधनों पर पड़ रहे मौजूदा दबावों के बढ़ने की संभावना है। वर्ष 2020 तक जलवायु परिवर्तन के परिणामस्वरूप जल संसाधनों पर वृद्धित दबाव के कारण 75 से 250 मिलियन लोगों के प्रभावित होने का अनुमान है।[33]

बढ़ती हुई जल की कमी खाद्य असुरक्षा का और देशों के भीतर तथा देशों की बीच जल के लिए बढ़ते हुए संघर्षों का कारण बन रही है। जैसे-जैसे विश्व की जनसंख्या बढ़ेगी और जल के उपभोग में वृद्धि होगी, जल-समस्याएं बढ़ती ही जाएंगी। 2025 तक दुनिया की 40 प्रतिशत आबादी, जोकि कुल मिलाकर 3 बिलियन से भी अधिक होगी, ऐसे देशों में निवास कर रही होगी जो जल संबंधी दबाव या जल की चिरकालिक कमी की समस्या से जूझ रहे हैं।[34]

जलवायु परिवर्तन के चलते विश्व में व्यापक रूप से तापमान में वृद्धि हुई है। तापवृद्धि के परिणामस्वरूप दोनों ही गोलार्द्धों में पर्वतीय ग्लेशियरों और हिमाच्छादन में कमी आई हैं और पूरी 21वीं शताब्दी में इसमें तेजी आने का अनुमान है। इससे जल की उपलब्धता तथा जलविद्युत क्षमता में कमी आएगी और प्रमुख पर्वतीय श्रृंखलाओं (उदाहरणार्थ हिन्दु-कुश, हिमालय, एंडीज),से जल पिघलकर जिन क्षेत्रों में पहुंचता है, जहां इस समय दुनिया की आबादी के छठे भाग से भी अधिक लोग रहते हैं, उन क्षेत्रों की नदियों के मौसमी प्रवाह में परिवर्तन आएगा।[35] 2050 के दशक तक मध्य, दक्षिण, पूर्व तथा दक्षिण-पूर्व एशिया में, विशेष रूप से बड़ी-बड़ी नदी घाटियों में ताजे जल की उपलब्धता में कमी आने का अनुमान है।[36]

गर्म जलवायु के कारण जल विज्ञान चक्र में तेजी आएगी जिससे वर्षा में और अप्रवाह के परिमाण व समय में परिवर्तन आएगा। सुलभ अनुसंधान से पता चलता है कि भविष्य में कई क्षेत्रों में भारी वर्षा की घटनाओं में अत्यधिक वृद्धि होगी, जबकि कुछ क्षेत्रों में औसत वर्षा में कमी आने का अनुमान है।

---

[31]वाई एस शिवाय और अंशु राहल, इफेक्ट ऑफ ग्लोबल वार्मिंया ऑन क्रॉप प्रोडक्टिविटी, कुरुक्षेत्र, जुलाई 2008, पृ॰19)।

[32]एम॰एस॰ स्वामीनाथन, फॉर एन एक्शन-प्लान फॉर बिहार, द हिंदू, 5 सितम्बर, 2008.

[33]क्लाइमेट चेंज 2007: लिन्थेसिस रिपोर्ट, आई॰ पी॰ सी॰ सी॰, जेनेवा पृ॰ 11.

[34]वाटर कॉनफ्लिक्ट्स लूम एज सप्लाइज़ टाइटेन; फूड सिक्योरिटी थ्रेटेन्ड, इकोसिस्ट्म्स इन डिकलाइन (http://www.worldwatch.org/node/1600).

[35]क्लाइमेट चेंज 2007: इम्पैक्ट्स एडैप्टेशन एंड वलनरेबिलिटी (फोर्थ एसेसमेंट रिपोर्ट ऑफ द आई॰ पी॰ सी॰ सी॰, जेनेवा, 2007, पृ॰11)।

[36]क्लाइमेट चेंज 2007, सिन्थेसिस रिपोर्ट, पृ॰ 11.

बीसवीं शताब्दी के दौरान बृहत नदी थालों में भयानक बाढ़ की आवृत्ति में वृद्धि हुई है और ऐसी संभावना है कि विश्व की 20 प्रतिशत आबादी ऐसे क्षेत्रों में रहेगी जहां नदी में बाढ़ आने की संभावना वर्ष 2080 तक बढ़ जाएगी।

बढ़ती बाढ़ समाज, वास्तविक अवसंरचना और जल गुणवत्ता के लिए चुनौतियां पैदा करती है। बढ़ते तापमान से ताजे मृदुजल वाली झीलों और नदियों की भौतिक, रासायनिक और जैविक विशेषताओं पर प्रभाव पड़ेगा और साथ ही, इससे ताजे जल में उत्पन्न होने वाली कई विशिष्ट प्रजातियों, सामुदायिक संरचना और जल गुणवत्ता पर जबरदस्त नकारात्मक प्रभाव पड़ेगा। तटीय क्षेत्रों में समुद्र तल के ऊंचा होने से भू-जल आपूर्ति में बढ़ते हुए खारेपन की स्थिति के परिणामस्वरूप जल संसाधन संबंधी अवरोधों में वृद्धि होगी।

(iv) **भारत में जल स्थिति पर प्रभाव**

जलवायु परिवर्तन के प्रभाव के संबंध में भारत को कई मोर्चों पर प्रमुख चुनौतियों का सामना करना पड़ रहा है इस संबंध में, जल सुरक्षा एक अत्यंत महत्वपूर्ण खतरा है। बदलती जलवायु के कारण भारतीय उपमहाद्वीप में जल संसाधनों पर दबाव बढ़ता जाएगा।

हिमालयी हिमनद, बारहमासी नदियों विशेषकर सिंधु, गंगा और ब्रह्मपुत्र नदी प्रणालियों के लिए ताजे जल के स्रोत हैं। हाल के दशकों में, हिमालयी क्षेत्रों में अत्यधिक भूमि उपयोग (जैसे वन-कटाई, कृषि उपयोग और नगरीकरण) के परिणामस्वरूप व्यापक परिवर्तन हुआ है जिससे बारंबार जलीय आपदाएं आती हैं, झीलों में अत्यधिक गाद जमती है और झीलें प्रदूषित होती हैं। इस बात के प्रमाण हैं कि कुछ हिमालयी हिमनद 19वीं शताब्दी से अत्यधिक पिघल रहे हैं।[37] उपलब्ध अभिलेखों से पता चलता है कि गंगोत्री हिमनद प्रतिवर्ष लगभग 28मी. पिघल रहा है। गर्मी यदि और बढ़ी तो हिमनदों के आकार में वृद्धि होने के बजाय उनके तेजी से पिघलने की संभावना है। परिवर्तित जलवायु परिस्थितियों के चलते हिमनदों के पिघलने की स्थिति में वृद्धि होने की संभावना है जिससे कुछ दशकों में कुछ नदी प्रणालियों में ग्रीष्म जल प्रवाह में वृद्धि होगी, साथ ही हिमनदों के विलुप्त होते ही जल प्रवाह में कमी आएगी।

तापमान में वृद्धि के परिणामस्वरूप भारत में बीसवीं शताब्दी के दौरान वर्षा ऋतु चक्र में महत्वपूर्ण परिवर्तन आया है। विगत में सिंधु-गंगा मैदानी क्षेत्र (आई जी पी आर) में गंभीर पर्यावरणीय समस्या भी देखी गयी है जहां विभिन्न नदियों (कोसी, गंगा, घाघरा, सोन, सिंधु और इसकी सहायक नदियां तथा यमुना सहित ने कई बार अपनी धारा को बदला है। हाल में, कोसी नदी की धारा में बदलाव के कारण नेपाल और बिहार में आयी विनाशकारी बाढ़ इसका उदाहरण है।

उपलब्ध अध्ययन से पता चलता है कि भारत की निरन्तर बढ़ती जा रही आबादी, जिसके वर्ष 2020 तक 1.30 बिलियन होने की संभावना है, के भरण-पोषण के लिए वर्ष 2020 तक खाद्य उत्पादन को 300 मीटरी टन तक बढ़ाना होगा। इस आवश्यकता को पूरा करने के प्रयोजन से कुल खाद्यान्न उत्पादन को वर्ष 2020 तक बढ़ाकर 50 प्रतिशत तक बढ़ाना होगा। ऐसी आशंका है कि अगले दो या तीन दशकों में खाद्यान्न की तेजी से बढ़ती मांग, विशेष रूप से मृदा अपरदन और जलवायु परिवर्तन की गंभीर समस्या को देखते हुए और भयावह हो सकती है।

---

[37]डा॰ प्रदीटतो घोष, द डे आफ्टर टूमारो: इम्पेक्ट ऑफ क्लाइमेट चेंज ऑन द वर्ल्डस वाटर, टेराग्रीन, 2008, पृ॰ 9.

आबादी में वृद्धि होने से जल की मांग बढ़ेगी और इससे जल की तीव्र निकासी होगी और इसके परिणामस्वरूप जल-भराव कम हो जाएगा। इसके परिणामस्वरूप, जल की उपलब्धता अन्ततः खतरनाक स्थिति में पहुंच जाएगी।

विगत चार दशकों के दौरान भू-जल निकालने के ढांचों के निर्माण में अभूतपूर्व वृद्धि हुई है। कृषि, औद्योगिक और घरेलू क्षेत्रों में जल की बढ़ती मांग से भू-जल संसाधन के अत्यधिक दोहन की समस्याएं पैदा हुई हैं। देश के विभिन्न भागों में भू-जल के घटते स्तर से भू-जल संसाधनों के निरन्तर प्रवाह के बने रहने को खतरा पैदा हो गया है।

वर्तमान में, जल मांग संबंधी उपलब्ध आंकड़ों से यह पता चलता है कि भारत में कृषि क्षेत्र जल का सबसे बड़ा उपयोगकर्ता है। उपलब्ध जल का लगभग 83 प्रतिशत केवल कृषि क्षेत्र में उपयोग होता है। यदि इस जल का विवेकपूर्वक उपयोग किया जाए तो वर्ष 2050 तक यह मांग कम होकर लगभग 68 प्रतिशत हो सकती है। यद्यपि, कृषि क्षेत्र फिर भी सबसे बड़ा उपयोगकर्ता रहेगा। इस मांग को पूरा करने हेतु जल के अतिरिक्त स्रोतों को विकसित करके मौजूदा जल संसाधनों में वृद्धि करने अथवा मौजूदा जल संसाधनों का संरक्षण करने और उनके दक्ष उपयोग की आवश्यकता होगी।

यह स्पष्ट है कि वैश्विक ताप वृद्धि के खतरों के कई प्रभाव हैं और ये खतरनाक हैं। मात्रा और गुणवत्ता के संदर्भ में जल सुरक्षा से, विकसित और विकासशील, दोनों देशों के लिए समस्याएं पैदा होती हैं। तथापि, भावी जलवायु परिवर्तन के परिणामों को भारत जैसे विकासशील देश में अत्यधिक विकटता से महसूस किया जा सकता है जिसकी अर्थव्यवस्था मुख्यतः कृषि पर निर्भर है और देश मौजूदा आबादी में हो रही वृद्धि तथा ऊर्जा, स्वच्छ जल और भोजन की संबद्ध मांगों के कारण पहले से ही दबाव में है।

(v) समुद्र-तल के स्तर में वृद्धि

पृथ्वी की सतह का लगभग 70 प्रतिशत भाग समुद्रों एवं महासागरों के रूप में जल से घिरा हुआ है। बढ़ते तापमान के कारण समुद्र-तल के स्तर में वृद्धि होना अपरिहार्य है। तापमान में वृद्धि होने और बर्फ की परतों के पिघलने से समुद्र तल ऊंचा हो जाता है। ग्रीनहाउस गैसों का सकेन्द्रण स्थिर हो जाने के कई शताब्दियों बाद भी तापमान में वृद्धि जारी रहेगी, जिसके कारण समुद्र तल 21वीं सदी में अनुमानित स्तर से भी अधिक ऊंचा हो सकता है। यदि पूर्व-औद्योगिक युग के 1.9 से 4.6° सेल्सियस से अधिक गर्मी का स्तर कई शताब्दियों तक बना रहा तो ध्रुवीय बर्फ के पिघलने के कारण समुद्र तल में होने वाली अंतिम वृद्धि कई मीटर तक हो सकती है, क्योंकि यह तापमान में वृद्धि के कारण समुद्र तल में होने वाली वृद्धि के अतिरिक्त होगा। मौजूदा परिदृश्य से स्पष्ट संकेत मिलता है कि समुद्र तल की ऊंचाई में निश्चित रूप से वृद्धि होगी।[38]

1990 के दशक के शुरुआती वर्षों से उपग्रह से उपलब्ध समुक्तियों से पता चलता है कि 1993 से समुद्र तल प्रतिवर्ष लगभग 3 मि॰ मी॰ की दर से ऊंचा हो रहा है, जो पिछली सदी के पूर्वार्द्ध के दौरान

[38]एन असेसमेंट ऑफ द इंटरगवर्नमेन्टल पैनल ऑन क्लाइमेट चेंजः क्लाइमेट चेंज 2007, सिन्थेसिस रिपोर्ट, पृ॰ 20.

के औसत से काफी अधिक है।[39] जलवायु परिवर्तन पर अंतर्सरकारी पैनल (आईपीसीसी) का अनुमान है कि बर्फ की परतों के तेजी से टूटने के कारण समुद्र तल भी तेजी से बढ़ सकता है। विश्व के तापमान में 3-4° सेल्सियस की वृद्धि होने के परिणामस्वरूप बाढ़ के कारण 330 मिलियन लोग स्थायी या अस्थायी रूप से विस्थापित हो सकते हैं। गर्म हो रहे समुद्रों में अधिक तीव्र उष्णकटिबंधीय तूफानों की आशंका बढ़ जाएगी। इस समय 344 मिलियन लोग उष्णकटिबंधीय चक्रवातों की आशंका वाले क्षेत्र में रहते है, उससे अधिक तीव्रता वाले तूफान बहुत-से देशों के लिए विनाशकारी परिणामों वाले हो सकते हैं। इस समय 1 बिलियन लोग शहरी मलिन बस्तियों में भंगुर पहाड़ी ढलानों पर या बाढ़ की आशंका वाले नदी तटों पर रह रहे हैं जो अत्यंत जोखिम की स्थितियों में जीते हैं। गंगा के डेल्टा और निचले मैनहट्टन में रहने वाले लोग समुद्र तल के बढ़ने से जुड़े बाढ़ के जोखिम का सामना करते हैं।[40]

(vi) भारत के तटीय राज्यों पर प्रभाव

महाराष्ट्र, गोवा और गुजरात के तटीय राज्य समुद्र तल की ऊंचाई बढ़ने के गंभीर खतरों का सामना करते हैं, जिनके कारण भू-क्षेत्र (कृषि-भूमि सहित) में बाढ़ आ सकती है और तटीय अवसंरचना तथा अन्य संपत्ति का नुकसान हो सकता है। गोवा सबसे अधिक प्रभावित हो सकता है और अपने कुल भू-क्षेत्र के बड़े हिस्से को, जिसमें उसके प्रसिद्ध समुद्र तट एवं पर्यटन अवसंरचना शामिल हैं, खो सकता है। मुम्बई के उत्तरी उपनगरीय इलाके जैसे वरसोवा समुद्र तट और अन्य आबादी वाले क्षेत्र, जो समुद्री नम भूमि और संकरी खाड़ी के किनारे बसे हैं, में भी भू-क्षेत्र के नुकसान और समुद्र तल की ऊंचाई बढ़ने के कारण अत्यधिक बाढ़ आने की आशंका है। बाढ़ आने से तटीय इलाकों से बड़े पैमाने पर लोग विस्थापित हो सकते हैं जिनसे नागरिक सुविधाओं तथा तीव्र शहरीकरण पर दबाव पहले से अधिक बढ़ जाएगा। सैलाबों के कारण समुद्री जल के भू-जल में मिल जाने से स्वच्छ जल की आपूर्ति कम हो सकती है जिससे जल का अभाव पहले से अधिक बढ़ सकता है। उड़ीसा जैसे समुद्र तट पर बसे राज्य पहले से अधिक बुरे चक्रवातों का सामना कर सकते हैं।

समुद्र तट के किनारे रहने वाली कई प्रजातियां भी खतरे में हैं। भारत के जैव-मंडल भंडार में मौजूद प्रवाल भित्ति भी लवण के प्रति संवेदनशील है और इस प्रकार समुद्र तल की ऊंचाई में वृद्धि होने के कारण उनका अस्तित्व भी खतरे में है, केवल प्रवाल भित्ति ही नहीं, बल्कि पादपप्लवक, मत्स्य भंडार और मानव जीवन भी, जो उन पर आश्रित हैं, गंभीर खतरे में हैं।

(vii) पारिस्थितिकी तंत्र और जैव-विविधता

जलवायु परिवर्तन के कारण जैव-विविधता का अत्यधिक नुकसान हो सकता है, जिससे अलग-अलग प्रजातियां और उनका पारिस्थितिकी-तंत्र, जो आर्थिक विकास एवं मानव कल्याण में सहायक है, भी प्रभावित हो सकता है। पशु और पादप जगत पर जलवायु परिवर्तन के समग्र प्रभाव का आकलन करना कठिन है।

वैश्विक तापवृद्धि के कारण कई पशुओं और पौधों के मूल निवासों पर पड़े विनाशकारी असर से आज ज्ञात बहुत-से पशुओं और पौधों की प्रजातियां खत्म हो सकती हैं। पहले भी धरती के पादप और जीव जगत का बड़े पैमाने पर उन्मूलन हुआ है, लेकिन वे प्राकृतिक कारकों से हुए थे। लेकिन, भविष्य में पादप और जीव जगत का संभावित उन्मूलन मानवजनित कार्यों के दुष्प्रभाव के कारण होगा।

[39]आई॰पी॰सी॰सी॰ फोर्थ एसेसमेंट रिपोर्ट, पृ॰ 111.

[40]यू॰एन॰डी॰पी॰, ह्यूमन डेवलपमेंट रिपोर्ट 2007-2008, पृ॰ 78.

विश्व-भर में मानव आबादी में बढ़ोतरी और उसके साथ प्रदूषण में वृद्धि और आवास की कमी के कारण बड़े पैमाने पर उन्मूलन और पादप एवं पशु जगत में परिवर्तन की परिस्थिति बन गई हैं।

अंतर्राष्ट्रीय विश्व वन्य जीवन निधि (डब्ल्यूडब्ल्यूएफ) और संयुक्त राष्ट्र राष्ट्रीय वन्यजीवन परिषद् के अनुसार उष्णकटिबंधीय क्षेत्रों से लेकर ध्रुवीय क्षेत्रों तक प्रजातियां खतरे में हैं। कई प्रजातियां उन परिवर्तनों, जिनका उनके पुरातन आवास-स्थलों पर बढ़ते तापमान पर प्रभाव पड़ेगा, को झेलने के लिए नए इलाकों में तुरन्त जा सकने में सक्षम नहीं हो सकेंगी। डब्ल्यूडब्ल्यूएफ ने जोर देकर कहा है कि विश्व के सर्वाधिक जोखिम वाले प्राकृतिक क्षेत्रों का पांचवां भाग प्रजातियों के 'प्रलय-सदृश' नुकसान का सामना कर सकता है।[41] वर्ष 2004 में हुए 5,743 उभयचर प्रजातियों के एक अन्य सर्वेक्षण से पता चला कि वैश्विक तापवृद्धि के कारण प्रत्येक तीन में से एक प्रजाति के उन्मूलन का खतरा है।[42]

अध्ययनों में अनुमान लगाया गया है कि वैश्विक तापवृद्धि से इस सदी के अंत तक उष्णकटिबंधीय क्षेत्र में कीटों का सफाया हो जाएगा जबकि शीतोष्ण एवं ध्रुवीय क्षेत्रों में उनकी संख्या अत्यधिक बढ़ सकती है। इसका समुद्री पारिस्थितिकी-तंत्र पर अत्यंत गंभीर असर होगा। यह केवल समुद्री तापमान बढ़ने और महासागर के अभिसरण में होने वाले परिवर्तनों से ही प्रभावित नहीं होगा बल्कि समुद्री जल के अम्लीकरण और उसमें घुले कार्बन डाइऑक्साइड (कार्बनिक अम्ल) का सान्द्रण बढ़ने से भी प्रभावित होगा। इससे सीपी-युक्त जीवों, प्रवाल भित्तियों और उन पर आश्रित पारिस्थितिकी-तंत्रों[43] पर नकारात्मक प्रभाव पड़ने की उम्मीद है। वातावरण में गर्मी के बढ़ने से विश्वभर में वनस्पति-जगत और प्राणि-जगत में भी बदलाव आएगा।

(viii) भारत की जैव-विविधता पर प्रभाव

भारत बृहत् जैव-विविधता वाला देश है जहां एक ओर हिमनद (ग्लेशियर) हैं तो दूसरी ओर कई मरुभूमि भी हैं। तथापि, जलवायु परिवर्तन इसके पारिस्थितिकी-तंत्र के लिए गंभीर खतरा बना हुआ है। पर्वतीय पारिस्थितिकी-तंत्र जैव-विविधता के सक्रिय स्थान हैं। तथापि, तापमान के बढ़ने से और मानवीय गतिविधियों से पर्वतीय जैव-विविधता में बिखराव और अवकर्षण आ रहा है। पिघलते हिमनदों से उत्पन्न बारहमासी नदियों के कारण हिमालयी पारिस्थितिकी-तंत्र को न सिर्फ भारत के लिए बल्कि चीन, पाकिस्तान, नेपाल जैसे हमारे पड़ोसी देशों के लिए भी जीवन-रेखा माना जाता है। उत्तरी और दक्षिणी ध्रुवों के बाद यह हिमनदों का सबसे बड़ा स्रोत है। तथापि, जलवायु परिवर्तन इस जीवन-दाता के लिए गंभीर खतरा बना हुआ है।

यह भी अनुमान लगाया जा रहा है कि पूर्वी और मध्य हिमालयी क्षेत्र में हिमनदीय झीलों के टूटने से आई बाढ़ (जी एल ओ एफ) की घटना में वृद्धि होगी जिससे निचले क्षेत्रों में प्रलयंकारी बाढ़ आएगी और इससे जान-माल, वन, खेतों और अवसंरचना को गंभीर क्षति पहुंचेगी।[44] इस तथ्य को ध्यान में रखते हुए कि हिमालय के पिघलते हिमनदों से बारहमासी नदियों का उद्गम होता है जिससे कृषि कार्य में और प्रगति होती है, इन हिमनदों का गंभीर प्रभाव पड़ता है। हिमालय से निकलने वाली नदियां

---

[41]बूस ई॰ जोहन्सन, 'ग्लोबल वार्मिंग इन दि ट्वेंटी-फर्स्ट सेंचुरी: प्लांट्स एंड एनिमल्स इन पेरिल, पृ॰ 536.

[42]वही, पृ॰ 579।

[43]बायोडायवर्सिटी एंड क्लाइमेट चेंज: इकोसिस्टम्स(http://www.unep-wcme.org/climate/impacts.aspx).

[44]आईसीआईएमओडी (टेक्निकल पेपर): दि मेल्टिंग हिमालयाज़, पृ॰ 6.

सिन्धु-गंगा (इण्डो-गैंजेटिक) पारिस्थितिकी-तंत्र जो मुख्यत: एक कृषिगत पारिस्थितिकी-तंत्र है, के साथ गहरा संबंध है। लगभग 65-70 प्रतिशत भारतीयों का मुख्य पेशा कृषि है।[45] खाद्य असुरक्षा का वर्तमान परिदृश्य भी जलवायु परिवर्तन के कारण ही उत्पन्न हुआ है क्योंकि मानव जीवन-निर्वाह काफी हद तक इण्डो-गैंजेटिक पारिस्थितिकी-तंत्र की कृषि पर निर्भर है।

राष्ट्रीय पर्यावरण नीति, 2006 में कहा गया है कि भारतीय मरुस्थलीय पारिस्थितिकी-तंत्र (शुष्क और अर्द्ध-शुष्क क्षेत्र) 127.3 मिलियन हेक्टेयर है जो देश के कुल भौगोलिक क्षेत्र का 38.8 प्रतिशत है और 10 राज्यों में फैला हुआ है। भारतीय मरुस्थलीय प्राणि-जगत् विभिन्न प्रकार के स्तनधारी और शीतकालीन प्रवासी पक्षियों की प्रजातियों से समृद्ध है। हाल के अध्ययनों में दर्शाया गया है कि मरुभूमियों में विस्तार के संकेत मिल रहे हैं जिससे मरुस्थलीकरण प्रक्रिया का जन्म हुआ है। जलवायु विन्यास ने मरुभूमि क्षेत्र की प्राकृतिक विशेषताओं में बदलाव ला दिया है; उदाहरण के लिए वर्ष 2006 में राजस्थान के बाड़मेर जैसे मरुस्थलीय जिले में भी बाढ़ आ गई थी। दार्फुर के हालिया संघर्ष को भी जलवायु परिवर्तन प्रक्रिया के साथ जोड़कर देखा जा रहा है। जनजातीय लोगों को अपने मुख्य पेशे, पशुपालन के लिए चारागाह की अनुपलब्धता के कारण एक स्थान से दूसरे स्थान में जाकर बसना पड़ता है।

तटीय और समुद्र परिस्थितिकी-तंत्र भारत की एक उपयोगी संपदा है। नदियों और तटीय क्षेत्रों के मैंग्रोव वन (आर्द्र भूमि) पौधों और प्राणियों की विशिष्ट और विविध प्रजातियों के लिए कार्बन सिंक और प्राकृतिक वास का काम करते हैं। आर्द्र क्षेत्र बाढ़ (समुद्र के जल स्तर में वृद्धि होने से आने वाली) और चक्रवात के लिए प्राकृतिक अवरोधक का काम करते हैं। जलवायु परिवर्तन से समुद्री पारिस्थितिकी-तंत्र पर पड़ने वाले प्रभाव की दृष्टि से सर्वाधिक सटीक उदाहरण प्रवाल भित्ति विरंजन (कोरल ब्लीचिंग) है।

भारतीय प्रायद्वीप में, इस प्रायद्वीप की नदियां भी मानसून पर निर्भर रहती हैं। इस प्रकार, प्रायद्वीपीय पारिस्थितिकी-तंत्र मूलत: मानसून-आधारित पारिस्थितिकी-तंत्र है। भारत कृषि तथा जल की आवश्यकता को पूरा करने और अपनी प्रचुर जैव-विविधता के संरक्षण एवं प्रवर्धन के लिए भी मुख्य रूप से मानसून पर निर्भर है। जलवायु परिवर्तन को भारतीय मानसून के बदलते स्वरूप के साथ जोड़कर देखा जाता है।

(ix) जलवायु परिवर्तन और स्वास्थ्य

जलवायु परिवर्तन से मानव जीवन के लिए कई खतरे उत्पन्न हो गए हैं। जलवायु परिवर्तन का दुष्प्रभाव चर्चा के दायरे को पर्यावरण अथवा विकास जैसे पारंपरिक मुद्दों से बहुत अधिक आगे ले गया है। जलवायु परिवर्तन के दूरगामी परिणामों ने नीति-निर्माताओं और योजना-निर्माताओं को मानव जीवन के हर संभव पहलू पर विचार करने के लिए बाध्य कर दिया है। यह सही है कि मानव स्वास्थ्य पर इसका अनर्थकारी प्रभाव पड़ता है। प्रत्येक वर्ष लगभग 8,00,000 लोगों की मौत वायु प्रदूषणजनित कारणों से, 1.8 मिलियन लोगों की मौत स्वच्छ जलापूर्ति, स्वच्छता के अभाव से उत्पन्न डायरिया एवं खराब स्वास्थ्य के कारण, 3.5 मिलियन लोगों की मौत कुपोषण से और लगभग 60,000 लोगों की मौत प्राकृतिक आपदाओं से होती है।[46] अपेक्षाकृत अधिक गर्म एवं अधिक परिवर्तनशील जलवायु से कुछ वायु प्रदूषणकारी तत्वों का स्तर बढ़ जाता है, अस्वच्छ जल और संदूषित खाद्य के माध्यम से रोगों का संचरण बढ़ जाता है।

---

[45]इंडिया 2008.

[46]वर्ल्ड हैल्थ ऑर्गेनाइजेशन: प्रोटेक्टिंग हैल्थ फ्रॉम क्लाइमेट चेंज।

जलवायु परिवर्तन का मानव स्वास्थ्य पर सीधा प्रभाव पड़ता है। उदाहरण के लिए, जलवायु जितनी अधिक गर्म होगी, मानव स्वास्थ्य पर खराब प्रभाव पड़ने की उतनी ही अधिक संभावना होगी। उपलब्ध अध्ययनों से पता चलता है कि इससे स्वास्थ्य समस्याओं में वृद्धि होगी। ऐसा अनुमान लगाया गया है कि गर्म हवा की लहरों (लू) के चलने की बढ़ती प्रवृत्ति और इसकी प्रचंडता तथा मौसम संबंधी अन्य उग्र स्थितियों के कारण मौतों की संख्या में वृद्धि होगी।

जलवायु परिवर्तन तथा इससे वैश्विक तापमान में हो रही वृद्धि के कारण बाढ़ और सूखे की पुनरावृत्ति में बढ़ोतरी हो रही है जिससे रोग संक्रमण का खतरा उत्पन्न हो रहा है। 2090 के दशक तक जलवायु परिवर्तन से भयंकर सूखे की घटनाओं की पुनरावृत्ति दुगुनी हो जाने की संभावना है। 2080 के दशक तक समुद्री जल-स्तर में वृद्धि के कारण प्रतिवर्ष और कई मिलियन लोगों के बाढ़ की चपेट में आने का अनुमान है।[47] सूखे के दौरान स्वच्छ जल के अभाव तथा बाढ़ के दौरान स्वच्छ जलापूर्ति के संदूषण के कारण स्वच्छता प्रभावित होती है और डायरिया संबंधी रोगों में वृद्धि हो जाती है। जल-चक्र में अनुमानित परिवर्तनों के कारण पूर्वी, दक्षिणी और दक्षिण-पूर्वी एशिया में बाढ़ और सूखे से जुड़े डायरिया संबंधी रोगों के कारण स्थानिक रुग्णता और मौतों में वृद्धि होने की आशंका है।[48] बाढ़ के कारण मच्छर जैसे रोग संक्रामक कीटाणुओं के पैदा होने का वातावरण बन जाता है। बार-बार आने वाली बाढ़ और सूखे की स्थिति प्रभावित क्षेत्रों से भारी संख्या में लोगों का प्रवास अपेक्षाकृत स्थिर परिस्थितियों वाले क्षेत्रों में होता है जिसके कारण वहां अधिक भीड़ वाली और अस्वास्थ्यकर परिस्थितियां बन जाती हैं जिससे जापानी एनसेफेलाइटिस और मलेरिया जैसे रोगों का संचरण होने लगता है।

संक्रामक रोगों के प्रसार में जलवायु परिवर्तन एक प्रमुख कारक है। किसी एक भौगोलिक क्षेत्र विशेष तक सीमित रोग दूसरे क्षेत्रों में फैल जाते हैं। विश्व स्वास्थ्य संगठन (डब्ल्यू एच ओ) ने अपने अध्ययन में दर्शाया है कि बढ़ते तापमान के कारण नेपाल और भूटान जैसे देशों से भी पहली बार मलेरिया के मामले सामने आ रहे हैं। यह भी अनुमान लगाया गया है कि 220-400 मिलियन अतिरिक्त लोग मलेरिया—एक ऐसा रोग जो प्रतिवर्ष लगभग एक मिलियन लोगों की जान लेता है—के शिकार हो सकते हैं। लैटिन अमेरिका के ऊंचाई वाले क्षेत्रों में और पूर्वी एशिया के कुछ भागों में डेंगू बुखार के साक्ष्य पहले ही मिल चुके हैं। जलवायु परिवर्तन से यह बीमारी और फैल सकती है।[49] अध्ययनों से पता चलता है कि जलवायु परिवर्तन के कारण वर्ष 2030 तक अफ्रीका में 90 मिलियन लोग मलेरिया के शिकार हो सकते हैं और 2080 के दशक तक विश्व की 2 बिलियन जनसंख्या डेंगू की चपेट में आ सकती है।

बढ़ते तापक्रम और बदलते वर्षा स्वरूप के कारण अनेक विकासशील देशों में फसलों की पैदावार में कमी आने की संभावना है जिसके फलस्वरूप खाद्यान्न-आपूर्ति पर दबाव बढ़ जाएगा। इसकी परिणति अन्ततः कुपोषण/अल्पपोषण की व्याप्ति के रूप में होगी। कुछ अफ्रीकी देशों में, 2020 तक[50] वर्षा-आधारित कृषि में 50 प्रतिशत तक कमी आ सकती है।

---

[47]क्लाइमेट चेंज - इम्पैक्ट्स, एडैप्टेशन एण्ड वल्नेरेबिलिटी (वर्किंग ग्रुप II कंट्रिब्यूशन टू द फोर्थ असेसमेंट रिपोर्ट ऑफ द इंटर गवर्नमेंटल पैनल ऑन क्लाइमेट चेंज, समरी फॉर पालिसीमेकर्स एंड टेक्निकल समरी)।

[48]क्लाइमेट चेंजः सिंथेसिस रिपोर्ट (आईपीसीसी, जेनेवा, 2007)।

[49]यूएनडीपी ह्यूमन डेवलपमेंट रिपोर्ट, 2007-08.

[50]क्लाइमेट चेंजः इम्पैक्ट्स, अडेप्टेशन एंड वल्नरेबलेटी (वर्किंग ग्रुप II कन्ट्रीब्यूशन टू द फोर्थ असेसमैंट रिपोर्ट ऑफ द इन्टरगवर्नमेन्टल पैनल ऑन क्लाइमेट चेंज समरी फॉर पॉलिसी मेकर्स एंड टैक्निकल समरी), 2007.

ग्रीनहाउस गैसों का उत्सर्जन उस ओजोन परत के क्षय के लिए जिम्मेदार रहा है जो सूर्य की हानिकारक प्रत्यक्ष किरणों से पृथ्वी की रक्षा करती है। समताप मंडल में विद्यमान ओजोन परत के क्षय से सूर्य की पराबैंगनी किरणें अत्यन्त तीव्र रूप से अपना प्रभाव दिखाती हैं जिसके फलस्वरूप चर्म कैंसर की घटनाएं बढ़ती जा रही हैं। इससे मोतियाबिन्द जैसे नेत्र रोगों से पीड़ित व्यक्तियों की संख्या भी बढ़ सकती है। माना जाता है कि यह रोग प्रतिरोधक क्षमता को भी प्रभावित करती है।

विश्व स्वास्थ्य संगठन और आईपीसीसी[51] के अनुमान बताते हैं कि जलवायु परिवर्तन के कारण स्वास्थ्य पर अत्यन्त गम्भीर नकारात्मक प्रभाव पड़ते हैं। इसके अतिरिक्त नकारात्मक प्रभाव मुख्यत: गरीबों की उस आबादी पर पड़ते हैं जो पहले ही अपने स्वास्थ्य के मामले में समझौता कर चुकी है और इस प्रकार सर्वाधिक अधिकार प्राप्त तथा सर्वनिम्न अधिकार प्राप्त के बीच की खाई और अधिक चौड़ी हो जाती है। सकारात्मक और नकारात्मक स्वास्थ्य संबंधी प्रभाव एक स्थान से दूसरे स्थान पर अलग-अलग होंगे और तापक्रम के बढ़ते जाने के साथ-साथ यह कुछ समय बाद परिवर्तित कर देगा।

[51]क्लाइमेट चेंज सिंथेसिस रिपोर्ट, आई॰पी॰सी॰सी॰ जेनेवा, 2007.

IV

जलवायु परिवर्तन की चुनौतियों के संबंध में भारत की प्रतिक्रिया

जलवायु परिवर्तन का प्रभाव इतना दूरगामी है कि कोई भी देश अब चुपचाप नहीं बैठा रह सकता। दुनिया की 17 प्रतिशत जनसंख्या वाला भारत देश अमेरिका के लगभग 30 प्रतिशत और यूरोपीयन देशों के 25 प्रतिशत की तुलना में, कुल वैश्विक ग्रीनहाउस गैसों का केवल 4 प्रतिशत ही उत्सर्जित करता है प्रतिव्यक्ति ग्रीनहाउस गैसों के उत्सर्जन के संदर्भ में, अमेरिका के प्रतिव्यक्ति 22 मीट्रिक टन CO_2 और यूरोपीयन देशों के प्रतिव्यक्ति 15 मीट्रिक टन CO_2 के उत्सर्जन की तुलना में, भारत में और भी कम अर्थात केवल 1.1 मीट्रिक टन CO_2 (वैश्विक औसत का लगभग 23%) का ही उत्सर्जन होता है। इस स्थिति में भिन्नता तब और भी स्पष्ट हो जाती है जब इस तथ्य की पृष्ठभूमि में देखा जाए कि भारत की 55 प्रतिशत जनता को अभी भी वाणिज्यिक ऊर्जा सुलभ नहीं होती है।

भारत का यह दृष्टिकोण रहा है कि ग्रीनहाउस गैसों के उत्सर्जन को कम करने के संबंध में किसी प्रतिबद्धता के लिए सहमत न हुआ जाए। भारत जलवायु परिवर्तन पर वैश्विक बातचीत में समानता चाहता है। भारत का यह विश्वास है कि चूंकि विकसित देश अपने विगत और वर्तमान उत्सर्जनों के कारण, इस समस्या के लिए अधिक जिम्मेदार हैं, अत: उन्हें ग्रीनहाउस गैसों के उत्सर्जन को स्थिर करने और उसमें कमी लाने की अपनी प्रतिबद्धता पर अवश्य ही अमल करना चाहिए।

लोगों के बढ़ते जीवन-स्तर की मांगों को पूरा करने और वाणिज्यिक ऊर्जा से वंचित लोगों को इसे उपलब्ध कराने के लिए भारत में और साथ ही अन्य विकसित देशों में ग्रीनहाउस गैसों का कुल उत्सर्जन बढ़ना ही है। भारत चिरस्थायी विकास के पथ का अनुसरण करने के लिए प्रतिबद्ध है। यद्यपि भारत में प्रतिव्यक्ति उत्सर्जन दुनिया में सबसे कम है, तथापि जलवायु परिवर्तन पर हमने हाल में राष्ट्रीय कार्य-योजना अंगीकार की है।

एक उत्तरदायी राष्ट्र के तौर पर, हमें अपने दायित्वों का ध्यान है। हमारे प्रयास, निश्चित तौर पर, वैश्विक सहायता मिलने पर विशेषकर वित्तीय प्रवाह और प्रौद्योगिकी की उपलब्धता के मामले में बहुत बढ़ जाएंगे।[52]

भारत स्वच्छ प्रौद्योगिकियों के सहयोगी विकास तथा वर्तमान पर्यावरण-अनुकूल प्रौद्योगिकियों के तत्काल हस्तांतरण हेतु *जलवायु परिवर्तन पर संयुक्त राष्ट्र रूपरेखा अभिसमय* तथा अन्य अंतर्राष्ट्रीय सम्मेलनों में जोर देता रहा है। भारत विकसित देशों पर इस बात के लिए जोर देता रहा है कि वे पर्यावरण की दृष्टि से उत्तम और स्वच्छ ऊर्जा प्रौद्योगिकियों का विकासशील देशों द्वारा सीमित सार्वजनिक क्षेत्र में उपयोग के लिए उन्हें शीघ्र अपनाए जाने, उनका प्रसार करने और वित्तीय संसाधनों के अंतरण के साथ परिनियोजन हेतु हस्तांतरण करें। भारत ने विकासशील देशों में जलवायु परिवर्तन संबंधी मुद्दों के समाधान के लिए यूएनएफसीसीसी के अधीन अनुकूलन निधि तथा विशेष जलवायु परिवर्तन निधि के शीघ्र परिचालन की मांग भी की थी।

---

[52]डा॰ मनमोहन सिंह, प्राइम मिनिस्टर ऑफ इंडिया, जी-8 समिट ऑन क्लाइमेट चेंज, होक्काइडो, जापान, जुलाई, 2008.

भारत *स्वच्छ विकास और जलवायु के संबंध में नई एशिया-प्रशांत भागीदारी* में सहभागी है, जिसमें भारत के अतिरिक्त प्रमुख विकसित एवं विकासशील देश जैसे ऑस्ट्रेलिया, चीन, जापान, दक्षिण कोरिया तथा संयुक्त राज्य अमरीका शामिल हैं। इसका ध्यान स्वच्छ एवं अधिक सक्षम प्रौद्योगिकियों के विकास, प्रसार और हस्तांतरण पर केन्द्रित है और यह यूएनएफसीसीसी के सिद्धांतों के अनुरूप है और यूएनएफसीसीसी के अधीन प्रयासों का अनुपूरक है तथा यह क्योटो प्रोटोकॉल को प्रतिस्थापित नहीं करेगा।

V

भारत के जलवायु-अनुकूल उपाय

इस तथ्य के बावजूद कि भारत का ग्रीनहाउस गैसों के उत्सर्जन में योगदान काफी कम है, भारत सरकार ने इस संबंध में स्थिति को सुधारने के लिए कई उपाय किए हैं। पर्यावरण और वन मंत्रालय भारत में जलवायु परिवर्तन संबंधी मुद्दों के लिए केन्द्रक अभिकरण (नोडल एजेंसी) है। भारत ने, विशेषकर नवीकरणीय ऊर्जा के क्षेत्र में जलवायु-अनुकूल कई उपाय किए हैं। विश्व में गैर-पारंपरिक ऊर्जा स्रोतों के लिए शायद एकमात्र समर्पित मंत्रालय (नवीन एवं नवीकरणीय ऊर्जा मंत्रालय) होने के अतिरिक्त भारत का नवीकरणीय ऊर्जा के क्षेत्र में सर्वाधिक सक्रिय कार्यक्रमों में से एक कार्यक्रम है।

भारत ने राष्ट्रीय पर्यावरण नीति 2006 अपनाई हुई है, जिसमें जलवायु परिवर्तन के बारे में जागरूकता फैलाने और अनुकूलन उपाय अपनाने के लिए कई उपायों तथा नीतिगत पहलों का उपबंध किया गया है। राष्ट्रीय वन नीति में वन एवं वृक्ष आच्छादन को वर्ष 2007 तक 25 प्रतिशत तथा वर्ष 2012 तक 33 प्रतिशत करने के लिए उनका विस्तार करके कार्बन सिंक बढ़ाने हेतु सक्रिय उपायों की परिकल्पना भी की गई है। इस प्रयोजन हेतु 11वीं योजना के अधीन एक विशाल वनीकरण कार्यक्रम शुरू किया गया है जिसके दायरे में 6 मिलियन हेक्टेयर का क्षेत्र शामिल किया गया है।

30 जून, 2008 को, भारत ने जलवायु परिवर्तन पर राष्ट्रीय कार्य-योजना (एनएपीसीसी) की शुरुआत की जिसका उद्देश्य जलवायु परिवर्तन की चुनौतियों से निबटने के लिए सरकार की प्राथमिकताओं तथा भावी कार्यों का निर्धारण करना तथा जलवायु परिवर्तन के लिए प्रासंगिक भारत के राष्ट्रीय कार्यक्रम को अद्यतन बनाना है। राष्ट्रीय कार्य-योजना में ऐसे उपायों की पहचान की गई है जो जलवायु परिवर्तन की चुनौती से प्रभावी रूप से निबटने के लिए अनुषंगी लाभ प्रदान करने के साथ-साथ हमारे विकास संबंधी उद्देश्यों का संवर्धन करते हैं। भारत के विकास और जलवायु-परिवर्तन संबंधी अनुकूलन लक्ष्य एवं ग्रीनहाउस गैस (जी.एच.जी.) अल्पीकरण को साथ-साथ आगे बढ़ाने के लिए विशेष रूप से आठ राष्ट्रीय अभियान (सौर अभियान, ऊर्जा दक्षता, वहनीय पर्यावास, जल, हिमालयी पारिस्थितिकी-तन्त्र, हरित भारत, पारिस्थितिकी-हरित कृषि और ज्ञान) तैयार किए गए हैं। तथापि, हमने उत्सर्जन में कमी लाने के लिए कोई मात्रात्मक लक्ष्य निर्धारित नहीं किया है। विशेषज्ञों ने प्रभाव मूल्यांकन हेतु कतिपय व्यवहार्य और प्रामाणिक सूचक शामिल करने के अतिरिक्त सभी आठ अभियानों के संबंध में परिमाणात्मक लक्ष्य और विशिष्ट संस्थागत तंत्र एवं विनियम तैयार करने का सुझाव दिया है।[53]

इसके अतिरिक्त, केन्द्रीय-बजट 2007-08 प्रस्तुत करते समय वित्त मंत्री द्वारा की गई घोषणा के अनुपालन में, 7 मई, 2007 को भारत सरकार ने प्रधान वैज्ञानिक सलाहकार, डा॰ आर॰ चिदम्बरम की अध्यक्षता में ''जलवायु परिवर्तन के प्रभावों संबंधी विशेषज्ञ समिति'' का गठन किया है जिसका कार्य मानवोत्पत्ति विज्ञान संबंधी जलवायु परिवर्तन का भारत पर पड़ने वाले प्रभाव का अध्ययन करना और मानवोत्पत्ति विज्ञान संबंधी जलवायु परिवर्तन प्रभावों से संबंधित असुरक्षा को दूर करने के संबंध में भारत द्वारा भविष्य में किए जाने वाले उपायों की पहचान करना है।

---

[53]पी.पी. सांगल, इण्डियाज़ क्लाइमेट चेंज एक्शन प्लान, '*दि इकोनॉमिक टाइम्स*', नई दिल्ली, 29 जुलाई, 2008.

इसके अलावा, 6 जून, 2007 को भारत के प्रधान मंत्री की अध्यक्षता में एक परिषद का भी गठन किया गया है जिसमें कई उत्कृष्ट व्यक्ति शामिल किए गए हैं और इसका कार्य जलवायु परिवर्तन संबंधी मुद्दों के प्रति राष्ट्रीय स्तर पर एक समन्वित प्रतिक्रिया देना और मूल्यांकन क्षेत्र में कार्य-योजना तैयार करने के लिए पर्यवेक्षण करना है।

साथ ही, भारत सरकार ने ''हरित भारत'' कार्यक्रम की शुरुआत की है, जिसके अधीन देश की अपक्षीण वन भूमि पर व्यापक स्तर पर वनरोपण का कार्य किया जाना है। इसके लिए ''अनिवार्य वनरोपण निधि प्रबंधन और योजना प्राधिकरण (सीएएमपीए)'' के अधीन उपलब्ध निधियों, बाजार से प्राप्त निधियों, साझेदारी संघ के विकास और पारिस्थितिकीय रूप से उचित अंतराल के बाद पेड़ों के गिरने से प्राप्त आय से वित्तीय संसाधन जुटाए जाएंगे। ''हरित भारत'' कार्यक्रम के माध्यम से लगभग 10 वर्षों में देश के लगभग छह मिलियन हेक्टेयर भूमि को आच्छादित किया जाएगा। शुरू में वर्ष 2007 में तीन मिलियन हेक्टेयर अपक्षीण वन भूमि पर वनरोपण का कार्य किया जाएगा जिसके लिए लगभग 10,000 करोड़ रुपये की आवश्यकता पड़ेगी।

VI

विकल्प

(i) ऊर्जा मिश्रण में नवीकरणीय ऊर्जा की बृहत् हिस्सेदारी

जलवायु परिवर्तन संबंधी चिंताओं के कारगर समाधान के लिए और सतत् विकास के रास्ते पर चलने के लिए वैश्विक ऊर्जा में, जो जीवाश्म ईंधन केन्द्रिक होता है, परिवर्तन किया जाना चाहिए। जल-विद्युत, सौर, पवन जैसे वैकल्पिक ऊर्जा स्रोतों की संभाव्यताओं के दोहन और स्वच्छ ऊर्जा की ओर धीरे-धीरे संक्रमण करने के प्रयास किए जाने चाहिए। विज्ञान हमें यह बताता है कि जलवायु स्थिरीकरण के लिए मानव द्वारा प्रयोग में लाए जाने वाले कार्बन-ईंधन में कम-से-कम 70 प्रतिशत कटौती किए जाने की आवश्यकता है।[54] प्रकृति ने हमें प्रचुर मात्रा में नवीकरणीय ऊर्जा स्रोत प्रदान किए हैं।

हम दीर्घकालीन ऊर्जा आवश्यकताओं को पूरा करने के लिए नाभिकीय ऊर्जा दोहन की संभावनाओं का भी पता लगा सकते हैं। फ्रांस के ऊर्जा उपयोग का लगभग 70 प्रतिशत अंश नाभिकीय स्रोत से आता है। उसने अपने उत्सर्जनों में कमी की है और अपने लिए एक सतत् ऊर्जा सुरक्षा का निर्माण भी किया है। हमें नवीकरणीय ऊर्जा स्रोतों का अधिकाधिक उपयोग करने और विश्व को स्वच्छ ऊर्जा के साथ एकसूत्र में बांधने की आवश्यकता है। भारत के संदर्भ में, ऊर्जा सेवन में परिवर्तन अपरिहार्य है, जैसेकि वर्तमान में हमारी ऊर्जा का लगभग 80 प्रतिशत जीवाश्म ईंधनों, जो ग्रीनहाउस गैस का सबसे बड़ा स्रोत है, को जलाने से प्राप्त होता है। हमें सौर ऊर्जा एवं पवन ऊर्जा को उपयोग में लाने और हमारी कुल ऊर्जा मिश्रण में इनकी हिस्सेदारी को बढ़ाने की आवश्यकता है। इस संदर्भ में ऐसी राय भी है, जो दीर्घकालिक ऊर्जा सुरक्षा और सतत् विकास हासिल करने के उद्देश्य से नाभिकीय ऊर्जा में हिस्सेदारी बढ़ाने के संबंध में भारत के प्रयासों का समर्थन करती है।

भारत ने एक-समान स्थिति बनाए रखी है कि वह अपनी ग्रीनहाउस गैसों के उत्सर्जनों में कटौती करने के लिए कोई वादा नहीं करेगा क्योंकि भारत में प्रति व्यक्ति उत्सर्जन सबसे कम हैं और सबसे पहले विकसित देशों ने ही इस समस्या को पैदा किया है और विकासशील देशों को विकास करने के लिए कार्बन स्पेस की आवश्यकता होती है।[55] फिर भी, एक जिम्मेदार देश के रूप में हमें इस दिशा में कुछ ठोस उपाय करने होंगे। भारतीय अर्थव्यवस्था के विभिन्न क्षेत्रों की संवीक्षा करने पर यह प्रकट होता है कि उर्जा अवसंरचना का उन्नयन, नवीकरणीय उर्जा अवसंरचना में निवेश करना तथा ऐसी नीति को बढ़ावा देना होगा, जिससे उर्जा सुरक्षा के साथ-साथ ग्रीनहाउस गैसों के उत्सर्जन में कमी लायी जा सके।

नवीकरणीय ऊर्जा अवसंरचना में निवेश का किया जाना, इस संबंध में कार्रवाई के लिए प्राथमिकता वाला क्षेत्र है। जब तक कि हम परिवहन, निर्माण और अन्य संबंधित क्षेत्रों में अल्प कार्बन अवसंरचना का निर्माण और रख-रखाव में पर्याप्त निवेश नहीं करते, तब तक हम दीर्घकाल में जलवायु परिवर्तन की चुनौतियों का सामना नहीं कर सकते। अत: हमारे विकास की प्रगति स्वच्छ विकास तंत्र पर आधारित है। इसके अलावा, वैकल्पिक ईंधनों और अल्प कार्बन अवसंरचना में अनुसंधान एवं विकास को प्राथमिकता दी जानी चाहिए। जब तक कि हम देशी हरित प्रौद्योगिकी को विकसित नहीं कर लेते हैं तब तक हम सतत् विकास को हासिल नहीं कर सकते।

---

[54]आई.पी.सी.सी.: सैकण्ड असेसमेंट सिन्थेसिस ऑफ साइंटिफिक-टेक्निकल इंफोर्मेशन रिपोर्ट।

[55]जी. अनन्तपद्मनाभन, वाट शुड बी इंडियाज़ स्टैंड एट बाली क्लाइमेट मीट? द इकनॉमिक टाइम्स, 20 नवम्बर, 2007.

(ii) सतत विकास के लिए गांधीवादी दृष्टिकोण

महात्मा गांधी सतत् विकास के पुरोधा रहे हैं। इसका आशय यह है कि समानता और न्याय के आधार पर प्रकृति और पारिस्थितिकी के साथ मानवजाति का सामंजस्यपूर्ण अस्तित्व कायम रहे। उन्होंने बहुत पहले वर्ष 1924 में कहा था कि ''पृथ्वी प्रत्येक व्यक्ति को इतना तो देती है जिससे उसकी जरूरत पूरी हो जाए, पर वह किसी व्यक्ति के लालच को संतुष्ट नहीं कर सकती।''[56] इस वैश्विक विचारधारा के साथ महात्मा गांधी शुरू से लेकर अन्त तक औपनिवेशिक आधुनिकता, जो पृथ्वी ग्रह की वहन क्षमता और शोषित लोगों तथा संपूर्ण ग्रह के संसाधनों से अधिक रही है, की आलोचना करने में लगे रहे। अत:, उनके नेतृत्व में हमारी आजादी की लड़ाई सतत् विकास के लिए इतिहास की अब तक की पहली लड़ाई थी।

गांधीजी के जीवन का आदर्श था कि सादा जीवन और उच्च विचारों के साथ प्रबुद्ध एवं नि:स्वार्थ भाव से नैतिक जीवन व्यतीत किया जाए। उन्होंने वर्ष 1938 में लिखा था:

> ''वस्तुत: मनुष्य की खुशी संतुष्टि में निहित होती है। चाहे कोई कितना ही धनवान क्यों न हो, यदि वह असंतुष्ट है, तो वह अपनी इच्छाओं का दास हो जाता है .....। भौतिक सुख-सुविधाओं और उनको अधिकाधिक जुटाने के लिए सतत् रूप से प्रयास करना एक बुराई है। मैं साहसपूर्वक यह कह सकता हूं कि यूरोपियों को अपने दृष्टिकोण को नया रूप देना होगा, यदि वे उन सुख-सुविधाओं जिनके वे दास बनते जा रहे हैं, के तहत अपना नाश नहीं होने देना चाहते ...''।

महात्मा गांधी पश्चिमी संस्कृति और सभ्यता से इतना अधिक दु:खी हो गए थे कि उन्होंने लिखा ''यदि भारत ने विकास के पश्चिमी मॉडल का अनुकरण किया, तो उसे उस प्रगति, जिसे उन्होंने हासिल किया था, को हासिल करने हेतु एक से अधिक ग्रह की आवश्यकता पड़ेगी।''

वैश्विक तापवर्द्धन और वैश्विक अर्थव्यवस्था संबंधी निकोलस स्टर्न समिति के प्रतिवेदन में भी गांधीवादी दर्शन को रेखांकित किया गया है। इसमें यह टिप्पणी की गयी है कि ग्रह के संसाधनों और ऊर्जा के उपभोग की मौजूदा दर पर मानवत्व के जीवित रहने के लिए एक से अधिक ग्रह की आवश्यकता होगी। अत:, स्टर्न समिति के प्रतिवेदन में जीवन-शैली में परिवर्तन लाते हुए और कार्बन अर्थव्यस्था को गैर-कार्बन अर्थव्यवस्था में परिवर्तित करते हुए ग्रीनहाउस गैस उत्सर्जन की कमी पर जोर दिया गया।

हमें अपने दृष्टिकोण में परिवर्तन करने और निरंतर विकास के लक्ष्य को प्राप्त करने की आवश्यकता है। उन घटकों के समुच्चय को अपनाकर, जिसमें स्वच्छ प्रौद्योगिकी को स्वीकार किया जाना, संसाधनों का न्यायोचित वितरण और समानता एवं न्याय के मुद्दों का समाधान करना सम्मिलित है, हम अपनी विकास-प्रक्रिया को प्रकृति के साथ और अधिक सामंजस्यपूर्ण बना सकते हैं।

---

[56]कलेक्टेड वर्क्स ऑफ महात्मा गांधी, वाल्यूम 29.

VII

उपसंहार

जलवायु परिवर्तन, सम्भवत:, निरंतर विकास के लिए सबसे बड़ी चुनौती है। इसका समाधान साझे परिप्रेक्ष्य वाले सभी देशों द्वारा, संकीर्ण और अदूरदर्शी विचारों से मुक्त होकर किया जाना चाहिए। विकसित देशों को अपने संकीर्ण हितों से ऊपर उठना चाहिए और जलवायु परिवर्तन के मुद्दे पर, जोकि भावी मानवता के लिए अत्यन्त प्रासंगिक है, सहयोगात्मक और सामूहिक रणनीति तैयार करने के लिए विकासशील देशों के साथ मिलकर काम करना चाहिए। तथापि, जलवायु परिवर्तन की चुनौतियों से निपटने की दिशा में अब तक किए गए प्रयास छुटपुट और अलग-अलग रहे हैं। हमें तत्काल एक ऐसे आर्थिक निदर्श की आवश्यकता है जो, वैश्विक हो, समावेशी हो, सहयोगात्मक हो, पर्यावरण के दृष्टिकोण से अनुकूल हो और सबसे बढ़कर वैज्ञानिक हो। एक सजग टिप्पणीकार जेफरी साच्स के अनुसार, ''दुनिया की वर्तमान पारिस्थितिकीय, जनसांख्यिकीय और आर्थिक प्रक्षेप-पथ विच्छिन्न हो गया है जिसका आशय यह है कि यदि हम ''इसी तरह व्यवसाय करना जारी रखेंगे तो हमें आपदापूर्ण परिणामों वाले सामाजिक और पारिस्थितिकीय संकटों का सामना करना पड़ेगा।'' गरीबों की आवश्यकताओं को पूरा किए जाने पर आधारित अनवरत् विकास और जल, वायु, ऊर्जा, भूमि और जैव-विविधता के दुर्लभ संसाधनों के उचित उपयोग को और अधिक सहयोगात्मक प्रयत्नों के साथ जारी रखना होगा। केवल तभी, हम अपने ग्रह को जलवायु संबंधी घोर विपत्तियों से बचाने की दिशा में आगे बढ़ सकते हैं।

संदर्भः

1. कलेक्टेड वर्क्स ऑफ महात्मा गांधी, वाल्यूम 29.
2. इरिक न्यूमेयर, ग्रीनिंग ट्रेड एण्ड इनवैस्टमेन्टः एनवायरनमैण्टल प्रोटैक्शन विदाउट प्रोटैक्शनिज्म, अर्थस्कैन पब्लिकेशन्स लिमिटेड, 2001.
3. ब्रूस ई. जोहान्सन, ग्लोबल वार्मिंग इन द ट्वेंटी फर्स्ट सेंचुरीः प्लान्ट्स एण्ड एनिमल्स इन पेरिल (www.greenwodocom.).
4. जेफरी डी. साच्स कामनवेल्थः इकॉनॉमिक्स फॉर ए क्राउडेड प्लैनेट; एलेन लेन, 2008.
5. हर्बर्ट गिरार्डेट (एड) सर्वाइविंग द सेंचुरी, अर्थस्कैन, लंदन, 2007.
6. एन. के. सिंह, द पॉलिटिक्स ऑफ चेंजः ए रिंगसाइड व्यू, नई दिल्ली, पेंग्विन वाइकिंग, 2007.
7. द डे आफ्टर टूमारोः इम्पैक्ट ऑफ क्लाइमेट चेंज ऑन द वर्ल्ड्स वाटर, डा. प्रदीप्तो घोष (टेराग्रीन, 2008).
8. चन्द्रशेखर दासगुप्ताः शिफ्ट्स ऑन क्लाइमेट चेंज, *द टेलीग्राफ*, कलकत्ता, 2 सितम्बर, 2008.
9. कोपिंग विद क्लाइमेट चेंजः गौतम दत्त एण्ड फैबिना गैओली, (इकॉनॉमिक एण्ड पॉलिटिकल वीकली, 20 अक्तूबर, 2007).
10. इफेक्ट ऑफ ग्लोबल वार्मिंग ऑन क्रॉप प्रोडक्टिविटी, वाई.एस. शिवाय एण्ड अंशु राहल (कुरूक्षेत्र, जुलाई, 2008).
11. फ्रैंकलिन कुडजो एण्ड ब्राइट साइमन्स, 'यूएन क्लाइमेट चेंज प्लान्स एण्ड वर्ल्ड्स पूअर', *द पायोनियर,* 9 सितम्बर, 2008.
12. एन. के. सिंह, प्रिफरेंशियल ट्रेड एग्रीमेण्ट्सः एसम्बलिंग ब्लॉक्स ऑर बिल्डिंग ब्लॉक्स? *द इंडियन एक्सप्रेस,* 24 अप्रैल, 2005.
13. एम. एस. स्वामीनाथन, फॉर एन एक्शन-प्लान फॉर बिहार, *द हिन्दू*, 5 सितम्बर, 2008.
14. पी. पी. सांगल, इंडियाज़ क्लाइमेट चेंज एक्शन-प्लान, *द इकॉनॉमिक टाइम्स,* नई दिल्ली, 29 जुलाई, 2008.
15. जी॰ अनंतपद्मनाभन, वट शुड बि इन्डयॉज स्टैण्ड एट बाली क्लाइमेट मीट? *द इकॉनॉमिक टाइम्स,* 20 नवम्बर, 2007.
16. एन एसेसमेन्ट ऑफ द इण्टरगवर्नमैण्टल पैनल ऑन क्लाइमेट चेंजः क्लाइमेट चेंज, 2007; सिंथेसिस रिपोर्ट.
17. कार्बन मार्केटः इमर्जिंग सेक्टर्स एण्ड ट्रेंड्स, एसोचेम, 2008.
18. क्लाइमेट चेंज, 2007: सिंथेसिस रिपोर्ट, आईपीसीसी, जेनेवा, 2007.
19. क्लाइमेट चेंज, 2007: इम्पैक्ट्स, एडेप्टेशन एण्ड वल्नरेबिलिटी (वर्किंग ग्रुप II कंट्रीब्यूशन टू द फोर्थ एसेसमेण्ट रिपोर्ट ऑफ द इंटरगवर्नमैण्टल पैनल ऑन क्लाइमेट चेंज)।
20. इनर्जी सब्सिडीज़ः देयर मैग्नीट्यूड, हाउ दे अफेक्ट एनर्जी इनवेस्टमेण्ट एण्डग्रीन हाउस गैस एमीशन्स एण्ड प्रोस्पेक्ट्स फॉर रिफॉर्म, फाइनल रिपोर्ट, यू एन एफ सी सी सी सेक्रेटरिएट, 10 जून, 2007.

21. एक्ज़ीक्यूटिव समरी ऑफ द रिपोर्ट ऑन 'द वैलिडिटी ऑफ फूड माइल्स ऐज एन इंडिकेटर ऑफ ससटेनेबल डेवलपमेन्ट, यू के डिपार्टमेन्ट फॉर द एनवायरनमेन्ट, फूड एण्ड रूरल अफेयर्स (डीईएफआरए), जुलाई, 2005.

22. ग्लोबल एमप्लॉयमेन्ट ट्रेण्ड्स: ब्रीफ (आइ एल ओ, जनवरी, 2007).

23. ह्यूमन डेवलपमेण्ट रिपोर्ट, यू एन डी पी, 2007/2008.

24. इण्टर-गवनमैण्टल पैनल ऑन क्लाइमेट चेंज (आई पी सी सी), सेकेण्ड एसेसमेण्ट सिंथेसिस ऑफ साइंटिफिक-टेक्निकल इन्फॉरमेशन रिपोर्ट, 1995.

25. आई पी सी सी थर्ड एसेसमेण्ट रिपोर्ट, 2001.

26. आइ पी सी सी फोर्थ एसेसमेण्ट रिपार्ट, 2007.

27. यूनाइटेड नेशन्स फ्रेमवर्क कन्वेन्शन ऑन क्लाइमेट चेंज (यूएनएफसीसीसी).

28. वर्ल्ड हेल्थ आर्गेनाइजेशन: प्रोटेक्टिंग हेल्थ फ्रॉम क्लाइमेट चेंज.

29. 9 जुलाई, 2008 को होक्काइडो, जापान में जलवायु परिवर्तन संबंधी जी-8 शिखरवार्ता में भारत के प्रधान मंत्री डा॰ मनमोहन सिंह का भाषण.

30. 16 सितम्बर, 2008 को लंदन में वर्ल्ड एनर्जी काउंसिल एनर्जी लीडर्स सम्मिट के दौरान ओ.ई.सी.डी. महासचिव एंजल गुरिया का प्रारंभिक भाषण.

देखे गए इंटरनेट साइट्स

31. बायोडायवरसिटी एण्ड क्लाइमेट चेंज: इकोसिस्टम्स
(http://www.unep-wcxme.org/climate/impacts.aspc).

32. क्लाइमेट चेंज एण्ड एग्रीकल्चर
(http:en.wikipedia.org/wiki/climate-change-and-agriculture).

33. क्लाइमेट चेंज एण्ड इट्स इम्पैक्ट ऑन इंडिया
(http://www.greenpeace.org/india/campaigns/choose-positive-energy/what-is-climate-change...).

34. इम्पैक्ट्स ऑफ क्लाइमेट चेंज: वैस्टर्न एण्ड सैण्ट्रल इंडिया
(www.sceindia.org/programme/geg/pdf/western.pdf).

35. द स्टर्न रिव्यू
(www.hm-treasury.gov.uk).

36. ट्रेड लॉ एण्ड क्लाइमेट चेंज: कनवर्जेन्स ऑर कॉन्फ्लिक्ट? वर्ड जी. जन्जेन एकिन गम्प स्ट्रॉस हायर एण्ड फेल्ड एल एल पी
(www.metrocorpcounsel.com/current).

37. वाटर कन्फिलिक्ट्स लूम एज सप्लाइज टाइटिन; फूड सिक्युरिटी थ्रेटेन्ड, इकोसिस्टम्स इन डिक्लाइन
(http://www.worldwatch.org/node/1600).

GMGIPMRND—313RS/126-02-2009.